Chap-5

पंचम अध्याय

जयसिंह 'व्यथित'

की

गद्य रचनाएँ

जयसिंह 'व्यथित' की गद्य रचनाएँ

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित गद्य साहित्य का परिमाण अध्यात्मिक तो नहीं है किन्तु जो भी है वह लोक ग्राह्य अवश्य है। वस्तुत: व्यथित जी एक ऐसे लोकाभिमुख साहित्यकार है जिनकी रचनाओं में काव्य के शास्त्रीय तथा उच्चस्थ मानद् मूल्यों को ध्यान में रखकर रचनाएँ नहीं हुई। बल्कि उनका साहित्य एक ऐसे सहज और सामान्य संवेदनशील रचनाकार का साहित्य है। जो आम लोगों के बीच में बैठकर लोग सामान्य की व्यथाओं एवं उनके शौख्य से जूड़कर साहित्य की सृष्टि करता है। उनका गद्य साहित्य भी लोक भोग्य ही है। अपने सहज व्यक्तित्व के समान ही इन्होंने गद्य रचनाओं में अपने विचारों को स्वाभाविक रूप से ही व्यक्त किया है। गद्य साहित्य में व्यथित जी का रुझान कथा साहित्य की ओर अधिक रहा क्योंकि कहानियों के माध्यम से व्यक्ति सहज ही सामान्य लोक की सहज प्रवृति से जुड़ जाता है। कहानियों में इन्होंने विशेषकर आँचलिक परिवेश को ही चिन्तित किया है। इनका अवधी भाषा में कथा संग्रह देश की माटी, भारतवर्ष, उत्तर पूर्वांचलित संस्कृति को कथाकथित करता है। विशेषकर यह कहानियां अवध प्रदेश

के आस-पास की संस्कृतिक परिस्थितियों का लेखा जोखा प्रस्तुत करता है और ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव होता है जैसे रचनाकार स्वयं इन कहानियों में कहीं न कहीं उपस्थीत होकर अपने आत्मकथन को व्यक्त कर रहा हैं।

इनका प्रथम लघुकथा संग्रह 'बुढ़ापे की लकडी' भी इसी प्रकार की विभिन्न कहानियों का संग्रह है, जिसमें व्यथित जी की अतित की स्मृतियाँ साकार होती हुई प्रतित होती है। व्यथित जी का गद्य लेखन किसी विशेष शैली । या अंदाज की सीमा में निबंधीत नहीं है और यदि अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो उनकी यह गद्य रचनाएँ शैली में व्यक्त हुई है। जहाँ रचनाकार स्वयं उपस्थित होकर श्रोताओं से रूबरू होता है। बिना किसी आग लपेट की अपनी बात कह देता है। कहानियों में जहाँ एक ओर इन्होंने सामान्य कुतुहल की सृष्टि की है तो वहीं साथ में उनके कथ्य का एक निश्चित उद्देश्य भी रहा। इन संदर्भ में हम उन्हें आदर्शोन्मुखी गल्पकार कह सकते हैं, जो अपनी बात को रोचकता प्रदान करने के लिए कथा जैसी लोकग्राहीय शैली का उपयोग करते हैं।

गद्य की कथा विधा के अतिरिक्त उन्होंने मंथन गद्य संग्रह में अपने कत्तिपय निबंध संग्रहीत किये है। यह निबंध भी उनकी विभिन्न प्रकार की मानसीकता के उद्वेतक है, जहाँ इन्होंने अपने छोटे-छोटे और बिखरे हुए अनुभवों को लेखाकार में संग्रहीत किया है।

''मंथन''(निबंध-संग्रह)

'मंथन' संस्कृत का पुल्लिंग शब्द है। मंथन का अर्थ होता है सोचकर पता लगाना। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के विचारों का यह समवेत मथकर निकाला हुआ है। मंथन प्रक्रिया का निचोड़ अनमोल रत्न का उद्भवकर्ता है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का मंथन निबंध संग्रह उन्हीं अनमोल रत्नों में से एक है। यूँ तो देवों और दानवों द्वारा किए गये मंथन से 14 रत्नों की प्राप्ति हुई थी किन्तु कवि के मंथन द्वारा अनगिनत अनमोल रत्नों की प्राप्ति हुई है। देखा जाए तो मंथन सच्चे

चिन्तन का परिचायक है। मंथन चिन्तन रूपी विचारों के मथने की ऐसी प्रक्रिया है जिसकी सघनता निश्चित रूप से किसी अकाट्य औषधि की जन्मदात्री बनती है। डॉ. 'व्यथित'जी का मंथन किसी संजीवनी से कम नहीं।

कवि 'व्यथित'जी द्वारा रचित 'मंथन' निबंध-संग्रह उनके संपूर्ण जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक आदि पहलुओं का निचोड़ है। सभी पहलुओं पर दृष्टिपात करते हुए स्वयं **डॉ. 'व्यथित'जी मंथन के बारे में लिखते हैं कि–** ''मंथन मेरे सम्पूर्ण स्वस्थ चिन्तन का निचोड़ है। मैंने सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं का यथामति स्पर्श कर उन्हें समाज और राष्ट्र के हित में घाट देने का नम्र प्रयास किया है। घाट कुछ भी हो सकता है किन्तु मैंने उन्हें अपनी मौलिक अवधारणाओं के अनुरूप ही गढ़ने का प्रयास किया है। प्रस्तुत पुस्तक सामाजिक, सांस्कृतिक राजनैति, साहित्यिक तथा आध्यात्मिकता से अपना तादात्म्य बनाए रखने के साथ-साथ विश्वास और आस्था का भी उद्‌घाटन करती है। कुल मिलाकर इसमें 54 निबंध संग्रहीत हैं जो समय-समय पर रैन बसेरा मासिक पत्रिका में प्रकाशित भी हुए हैं।''[1]

त्याग की पराकाष्ठा, भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति की मुख्य लाक्षणिकता है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी भारतीय संस्कृति के पुरोधा है। लेखक ने दूरदर्शन, रेडियो तथा चलचित्रों को लोक साहित्य के लिए घातक विषबेलि की संज्ञा प्रदान की है। जिसका जहर भारतीय संस्कृति को निष्प्राण बना रहा है। संस्कार के लिए साधना अनिवार्य है और गहन साधना की उत्कृष्ट निष्पति ही संस्कृति कहलाती है। संस्कारों और नैतिक जीवन मूल्यों के स्थान पर कुसंस्कारों तथा अनैतिक जीवन मूल्यों की व्यापक्ता बढ़ती जा रही है। वर्तमान समय में नैतिक मूल्यों का जिस तरह हास्य हो रहा है। वह हमारी भारतीय संस्कृति पर कुठाराघात है। इस समस्या के समाधान एवं निराकरण के लिए व्यथित जी सरकार और समाज को नैतिक और चारित्रिक विश्वास पर भार देने का आग्रह अपने साहित्य के माध्यम

से किया है।

डॉ. 'व्यथित'जी द्वारा रचित साहत्यि समाज में चारों तरफ व्याप्त चारित्रिक प्रदूषण के समाधान की तलाश करता है। लेखक ने ऐसे साहित्य सृजन को श्रेयस्कर बताया है जिससे समाज एवं जगत का उत्थान हो सके। आपने वर्तमान साहित्यकारों को भी आड़े हाथों लिया है। वर्तमान समय के साहित्यकारों का साहित्य अर्ध मूर्छित अवस्था में प्राणदायिनी वायु के लिए व्याकुल है। कवि के मतानुसार साहित्यकार को पक्षापक्षी से परे सर्वपक्षी होना चाहिए। साहित्यकार का जीवन स्फटिक की भाँति पारदर्शी होना चाहिए। रुग्ण समाज के स्वास्थ्य के लिए कारगर औषधि बनना चाहिए। समाज सेवी को विश्वनीयता बनाएँ रखना और आने वाले समाज का पथ प्रदर्शक बने रहना चाहिए।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने साहित्य और साहित्यकारों के उत्कर्ष के लिए सरकार और समाज से ठोस कदम उठाने के लिए कहा है। व्यथित जी में अपनी लेखनी के माध्यम से नारी वर्ग को उठाने, विधवाओं की दुर्गति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच आदि की विभीषिकाओं के उन्मूलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आपने संसार के चक्र के दो पहियों का जिक्र किया है, जिसमें एक नर और दूसरी नारी है फिर है, दूसरे पहिए की यदि उपेक्षा की जाय तो संसार चक्र कैसे चलेगा।

'मंथन' निबन्ध-संग्रह डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी द्वारा रचित एक वर्तमान कृति है। जिसके कुछ अंश का प्रकाशन 'रैन बसेरा' मासिक पत्रिका में कभी-कभी होता रहता था। व्यथित जी ने इस पुस्तक 'मंथन' के माध्यम से जनमानस में राष्ट्रिय चेतना, राष्ट्र प्रेम की अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए समूचे राष्ट्र में फैला हुआ भ्रष्टाचार तथा सामाजिक विषमताओं को दूर करने की बात करते हैं। **इसी संदर्भ में डॉ. शंकर राव कप्पिकेरी का कथन है कि–** ''डॉ. 'व्यथित' जी के लघुनिबंधों में राष्ट्रीय चेतना की झलक है। आपने जन-मानस में राष्ट्र-प्रेम-राष्ट्रिय अस्मिता को प्रतिबिम्बित किया है। आप सभी शोषणों के खिलाफ हैं। आप भूदान-सर्वस्व दान-

जीवनदान के पक्षधर रहे हैं। भूदान के जनक आचार्य विनोबा भावे जी का भी साथ दिया है। आप में प्रबल राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति है। डॉ. 'व्यथित'जी समूचे राष्ट्र में तेज गति से फैल रहे भ्रष्टाचार, अनाचार, दुराचार, हिंसाचार, असत्याचार, अपराधाचार, आदि से संत्रस्त हैं। सामाजिक विषमताओं के निर्मुलनार्थ समर्पित राष्ट्रसेवी भी हैं।''[2]

डॉ. कृष्णगोपाल मिश्र का कथन है कि ''गद्य को कवियों का निकष कहा गया है-**'गद्य कवीना निकषं वदन्ति।'** इस विचार से सिद्ध कवि डॉ. व्यथित जी का गद्य उनके कवि रूप का सबल साक्ष्य है। समीक्ष्य-निबधों की भाषागत सरलता, स्पष्टता और सुबोधता ने उनमें कविता की सुलभ रसात्मकता का भी सन्निवेश कर दिया है। प्रस्तुत उदाहरण उनकी भाषा के सहज स्वरूप की प्रस्तुति के साथ उनके लालित्यपूर्ण इस पक्ष की भी पुष्टि करता है-'सत्ता के उच्चासन पर बिराजमान महानुभावों से आज़ादी के इस पावन पर्व पर जनता की आशा अपेक्षा यही है कि वे भाषणबाजी से दूर हट आज के उस पावन पर्व पर आत्मचिंतन एवं आत्म-मंथन कर अपने दिलों-दिमाग के प्रदूषित कचरे को निकाल बाहर फेंके। यदि ऐसा करने की शक्ति एवं दृढ़ इच्छा शक्ति प्रभु उन्हें देगा तभी आज़ादी की प्रदूषित गंगा को प्रदूषण मुक्त किया जा सकेगा।' क्या हम अपने दिलों-दिमाग को प्रदूषण से मुक्त कराना चाहते हैं ? यदि हाँ, तो फिर देर किस बात की ? आइये इस राष्ट्रीय-ध्वज की साक्षी में प्रतिज्ञा बद्ध हों और नैतिक मूल्यों का झाडू लेकर अपने दिल दिमाग के अन्दर घर कर बैठे भय-भ्रष्टाचार तथा भाई-भतीजेवाद के प्रदूषित कचरे को झाड़-पोंछकर साफ कर दें।''[3]

'मंथन' निबन्ध-संग्रह में से उद्धृत उपर्युक्त उदाहरण से भाषा और शैली का स्पष्ट परिचय प्राप्त हो जाता है। इस अंश में उद्बोधन वार्तालाप, तर्क, अलंकारिक आदि शैलियाँ संयुक्त रूप में प्रस्तुत है। भाषा का प्रवाह और सुबोध गुण भी सहज सुलभ है। निबंध के उपर्युक्त शैलीगत स्वरूपों के अतिरिक्त उद्धरण शैली के प्रयोग

भी उन निबन्धों में उल्लिखित हैं। डॉ. 'व्यथित'जी ने कहावतों, लोकोक्तियों, पद्यांशों आदि द्वारा अपने निष्कर्षों को पुष्ट किया है। कुछ उदाहरण इस परिप्रेक्ष्य में द्रष्टव्य है-

आहार निद्रा भय मैथुनञ्च, सामान्य एतत् पशुभिर्नराण्याम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभि: समान:॥''[4]

''राजिव लोचन राम चले तजि,
बाप को राज बटाऊ की नाई ।''[5]

''साधु भोगी बैद्यरोगी, सूर पीठी घाव।
कीमियागर भीख मांगे, तो नहीं पतियाव ॥''[6]

''आला-बाला मकरी का जाला ।
पीसि-जतोला करो उजाला ।''[7]

उयर्युक्त उदाहरणों से डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के गहन अध्ययन का परिचय मिलता है। संस्कृत, हिन्दी और हिन्दी का विभाषाओं से उद्धृत इन उदाहरणों ने विषय-विवेचन को अपूर्व गंभीरता प्रदान की है। निबंध के पाँच अनिवार्य तत्वों-बुद्धि-अनुभूति, स्वकल्पना और शैली में से बुद्धि तत्त्व भी इनके कारण पुष्ट हुआ है। इस कारण ये सभी निबंध विचार प्रधान बन गये हैं।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के निजी व्यक्तित्व को विशेष रूप से सतत परिस्फुटित करने वाले इन निबन्धों को निबंध के शास्त्रीय स्वरूप परखने से उनकी सफलता स्वत: सिद्ध है। साहित्य की किसी विधा का पूर्णरूपेण अध्ययन करके उसे मौलिक ढंग से स्वतंत्र रूप में प्रकट करना ही निबंध कहलाता है और इनकी 'मंथन' कृति इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। **इसी संदर्भ में डॉ. रामचन्द्र वर्मा ने लिखा है कि–** ''किसी विषय या उसके किसी अंग का अच्छा अध्ययन करके नये और मौलिक ढंग से उसका संक्षेप में स्वतंत्र रूप से विवेचन करते हुए, जो गंभीर और अपेक्षतया

कुछ विवरणात्मक लेख प्रस्तुत किया जाता है, वही पारिभाषिक क्षेत्र में निबंध कहलाता है। डॉ. 'व्यथित'जी के ये सभी निबन्ध ऐसे ही गहन-अध्ययन, मौलिक-चिन्तन और स्वतंत्र-विवेचन से सम्पन्न है।''[8]

डॉ. महेन्द्रनाथ राय का कथन है कि– '' 'व्यथित' जी घिनौनी दहेज प्रथा पर चोट करते हैं, कभी राजनीति की मूल्यहीनता को आड़े हाथों लेते हैं, कभी धार्मिक कट्टरता के प्रसंग में **'तस्लीमा नसरीन'** की कार्यवाही को उचित ठहराते हुए मुस्लिम समाज में नारी की स्थिति पर आक्रोश प्रकट करते हैं। उनका ध्यान कभी लोकतांत्रिक देश भारत में प्रतिमाओं के खण्डन की शर्मनाक कूटनीति पर जाता है, तो कभी गंगा प्रदूषण पर होने वाले अपव्यय पर वे इन सबके मूल में छिपे षड़यंत्र की पोल खोलते हैं। 'व्यथित'जी की मुख्य चिन्ता यह है कि और अब प्रदूषण कैसे दूर होंगे जबकि हमारा स्वयं का मन ही घनघोर रूप से प्रदूषित है। इसलिए उनकी चेतावनी है कि पहले राष्ट्र के कर्णधार अपने दिल-दिमाग के प्रदूषण को दूर करे, उन्हें निर्मल बनाने का उपक्रम करें।''[9]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी को अच्छी तरह से ज्ञात है कि राजनीतिक पार्टियाँ मूल्यहीन हैं और आदर्शहीन भी है। वे धर्म-जाति-संप्रदाय सभी का अपने हितों में दुरूपयोग करती है। वे प्रमाद वश इस सत्य की भी अवज्ञा करते हैं कि वे देश की भाग्य नहीं, बल्कि जनता ही उनके भाग्य विधाता का विधान करने वाली है। वोट और आरक्षण की राजनीति अथक कूटनीति ने समाज में कितना असंतोष फैलाया है, पूरे समाज में कैसी विषमता उत्पन्न की है पहले जहाँ भेद नहीं था, वहाँ भी भेद बुद्धि की कैसी फाँक पैदा कर दी है। डॉ. 'व्यथित'जी इसकी पत्त दर पत्त खोलते हैं। राजनिति के अपराधीकरण पर वे टिप्पणी करते हैं। वर्तमान लोकतंत्रीय चुनाव प्रणाली की खामियों की हकीकत कहते हैं और स्वस्थ, साफ सुथरा प्रणाली का धनात्मक सुझाव भी पेश करते हैं।

डॉ. 'व्यथित'जी का मानना है कि राष्ट्रवादी अपने महापुरुषों का सही संदर्भ

में स्मरण करें। यह स्मरण उनकी दिल-दिमाग पर छाए अंधकार को दूर करेगा। महात्मा गाँधीजी के सविनय अवज्ञा आंदोलन के मर्म को न समझ पाने के कारण से ही देश की हड़ताले राष्ट्रीय क्षति को न्यौता देती रहती है। नैतिक शिक्षा और धार्मिक दृष्टिकोण से ही भारतीय जीवन में व्याप्त बहुत सारी असंगतियाँ दूर हो सकती हैं। जिन्हें भारतीयता, भारतीय संस्कृति और भारत भूमि से लगाव होगा वे गन्दी राजनीति का खेल न खेलेंगे, लोगों को धर्म, जाति, आरक्षण, वोट, स्वर्ण और अवर्ण के खेमों में न बाटेंगे। ऐसे लोग राष्ट्रभाषा हिन्दी का हृदय से आदर करेंगे। अंग्रेजी भाषा के आतंक से मुक्त होंगे। भारत देश के सर्वतोमुखी विकास के लिए पुरुषार्थ और कर्मनिष्ठा को वरीयता देंगे। ऐसे ही लोगों के हाथों में विधायिका, न्याय-पालिका, कार्य-पालिका का यथोचित सम्मान होगा और देश, भाषा, संस्कृति, इतिहास के स्तर पर भावात्मक एकता के सूत्र में बंधेगा। ऐसे लोगों को भलीभाँति ज्ञात होगा कि 21 जून 1948 को 'लार्ड माउन्ट बेटेन' के वापस जाने के बाद भारत देश पूर्णरूप से स्वाधीन हुआ था।

डॉ. महेन्द्रनाथ राय का कथन है कि -''व्यथित जी ने 'मंथन' में भारतीय पर्वो एवं त्यौहारों के अन्तर्निहित अभिप्राय को पूरी गहराई से विवेचित किया है। वे इस देश में अवकाश धर्मी मानसिकता को राष्ट्रीय हित में पूरी तरह ऋणात्मक मानतें हैं। काम कम, परिश्रमिक अधिक की अवधारणा उन्हें राष्ट्रद्रोह प्रतीत होती है। अपने देश में काम के दिन निरंतर घटे हैं, यह घटाव उन्हें भीतर तक तोड़ जाता है। वे राष्ट्र और नई पीढ़ी को अवकाश मनाने की नहीं बल्कि पर्वों-त्यौहारों से उनकी प्रकाश धर्मी प्रेरणा लेने के लिए सचेत करते हैं। उन्हें अच्छी तरह ज्ञात है कि जिस देश में उपयोग और प्रदर्शन के स्थान पर श्रम और पसीने की कमाई को आदर दिया है, उसी देश और देशवासियों का सुरक्षित भविष्य होता है। यही वजह है कि क्रिकेट जैसे खेल का अपना नई पीढ़ी और कुछ हद तक पुरानी पीढ़ी में भी अतिशय आकर्षण उन्हें बेमानी लगता है। यह खेल भी उन्हें एक षड़यंत्र ही

प्रतीत होता है, जो इस देश के नवनिहालों को अपने आवश्यक कार्यों से भी कई-कई दिनों के लिए वितरत कर देता है। उन्हें न तो समय का अनादर हितकर लगता है और न तो अर्थ का ही। वे कृपणता से मितव्ययिता को पृथक करते हुए उपभोक्तावादी मानसिकता के प्रति वर्जना की मुद्रा अपनाते हैं और इस राष्ट्र के लिए श्रम की महिमा और सादगी की गरिमा का मर्म समझाते हैं।''[10]

प्रभुनाथ त्रिपाठी शास्त्री 'प्रभु' का कहना है कि – '' निबन्ध गद्य की कसौटी-इस तथ्यात्मक कथ्य को 'व्यथित'जी ने अपनी अनोखी निबंध कृति 'मंथन' द्वारा सत्यापित कर दिया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कालीन वैचारिक, चिंतनात्मक, भावात्मक निबंधों की अपेक्षा 'व्यथित'जी के अनुभव चेतना प्रधान निबंध अपने आप में आधुनिक एवं समकालीन कहे जा सकते हैं। इन निबन्धों में भारतीय मानव जीवन एवं लोकतांत्रिक समाज के विविध पहलुओं को हूबहू चित्रित किया गया है। कविता, कहानी, उपन्यास जैसी विधाओं की तरह यहाँ कल्पना की गुंजाइश नहीं । 'मंथन' लेखकीय अनुभूति चेतना का वह वैचारिक मंथन है, जिसमें 54 प्रकार के व्यंजनामृत रूपी निबंध रचकर साहित्यिक रसोई में पाठकों की थाली में लेखक ने परोस दिया है।

लेखक के शब्दों में– ''मैंने अपने विचारों का जो मंथन किया और उसमें जो नवनीत निकला उसे ही गद्य की निबंध विधा में निर्बाधित कर आप की थाली में परोसने की धृष्टता की है। प्रस्तुत पुस्तक 'मंथन' 'व्यथित' जी के विचारों के मंथन का नवनीत है। यह देश, समाज, राजनीति, संस्कृति, साहित्य भाषा, धर्म, आध्यात्म से अपना तादात्म्य तो रखती है, आस्था, विश्वास, पर्वो, त्यौहारों का भी उद्घाटन करती है।''[11]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अह्म प्रश्न उठाकर ''रचनाकार कैसा होता है? उनके मंतव्य से साहित्यकार की दुहरी भूमिका होती है। वर्तमान समाज में स्थूलरूप से रहते हुए मानसिक रूप से आनेवाले समाज की भावभूमि तैयार करता

है। रचनाकार नवयुग के नये स्वस्थ समाज का द्रष्टा एवं स्त्रष्टा होता है। **'जहाँ न पहुचे रवि वहाँ पहुचे कवि'**। वर्तमान के दूषणों पर खुलकर प्रहार करना रुग्ण समाज के स्वास्थ्य के लिए कड़वी दवा का घोल बनाकर और आनेवाले समाज का पथ प्रदर्शक बनना यही साहित्यकार की रचनाधर्मिता का मर्म है। उसका धर्म है पक्षापक्षी से, परे विश्वकल्याण।''[12]

मेरे मंतव्य से सरकार की अनीतियों के कारण आज स्वाभिमानी साहित्यकार अपनी कलम के बलबूते जिन्दा रह नहीं सकता। जबकि 'व्यथित'जी के मंतव्य से राष्ट्र और साहित्य के संबंध घनिष्ट होने चाहिए। परंतु आज देश और साहित्यकार दोनों की अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग है। ऐसे देखा जाए तो साहित्यकार हर प्रकार से मुक्त होना चाहिए। तभी वह मुक्त रूप से अच्छी रचना का सृजन कर पायेगा। उस कथ्य की पुष्टि के लिए डॉ. 'व्यथित' जी ने बहुत ही सटीक उपर्युक्त उदाहरण दिया है।

एक समय था जबकि कवि और साहित्यकार स्वछन्द रूप में रचनाएँ किया करते थें, लेकिन आज स्वाभिमानी साहित्यकार भी अपनी कलम से मुक्त रूप से रचना नहीं कर सकता। आज की सरकार और साहित्यकार दोनों का अपना अलग-अलग मत है। वास्तव में एक साहित्यकार सही ढंग से रचना तभी कर सकता है जब वह पूर्ण रूप से मुक्त होगा, इसी बात की पुष्टि करते हुए **'व्यथित'जी लिखते हैं कि** ''देश शरीर है, जनता उसका अंग है, उद्योगपति उसके हाथ पाँव, कुशल प्रशासन उसका सुन्दर चेहरा तथा साहित्यकार उसकी देखनेवाली आँख और आइना। शरीर के किसी भी अंग के दर्द से आँख भर जाती है। यदि आँख की उपेक्षा की गई तो शरीर अंधा हो जाएगा। यदि साहित्य और साहित्यकार की उपेक्षा की गई तो सारे का सारा देश महाभारत का धृतराष्ट्र बन जायेगा।''[13]

बृजेशकुमार पाण्डेय 'इन्दु' का कथन है कि– ''लेखकों ने निबंधों का विषय चयन समाज की भुख-प्यास को देखते हुए किया है। समाज में इन्हें आज पूर्ण

रूपेण महत्व दिया जा रहा है। प्रकृति के छद्‌मों में उलझे ऋषि मुनि अपनी तपस्थली के के इर्द गिर्द अनेक भावनाओं का संग्रह किया। त्याग भाव लेखक का बड़ा प्रिय भाव रहा है। इसके बाद वह संस्कार साधना और संस्कृति के आपसी सबन्धों को विधिवत् निरूपित किया है। **वसुधैव कुटुम्बकम्, सत्य मेव जयते,** इत्यादि गौरवशाली परम्परा को लोकहित में श्रेष्ठ बताया है। हमारी परम्परा कितनी उदात्त थी। हम आज पाश्चात्य संस्कृति की तरफ दौड़ रहे हैं और पाश्चात्य संस्कृति वाले हमारी संस्कृति से तत्त्व छान रहे हैं। आज हमारे समाज में विचित्र यक्ष प्रश्न खड़े हो रहे हैं ? आज 'चारित्रिक प्रदूषण और उसका समाधान' नामक शीर्षक में लेखक ने समाज में व्याप्त इस प्रदूषण के समाधान का उत्स दिखाया है।''[14]

'दहेज और भारतीय समाज' शीर्षक में लेखक ने हमारे समाज में जो अनेक कुरीतियाँ आती आ रही है उनमें से सबसे भयंकर दहेज प्रथा है। दहेज प्रथा में लेखक ने वर पक्ष के कुपात्र दान जो लेते हैं उसे रावण की संज्ञा देते हैं। कन्या पक्ष को राम की निरीह गाय की संज्ञा से उद्‌बोधित करता है। इस प्रथा को आगे बढ़ाने के लिए माता-पिता जवाबदारी हैं। बाल्यावस्था से ही बच्चे को ऐसे-ऐसे अनेक मनो विनोदों को प्रदान करते हैं। जिससे वह दहेज माँगने का उपक्रम करने लगता है। व्यथित जी ने चारित्रिक शिक्षा देने पर बल दिया है। फिर अगले शीर्षक में लेखक ने 'धर्म, राजनीति और संत' के पारस्परिक सम्बंधों का वर्णन किया है। भारत देश पर कई बार उथल-पुथल हुए परन्तु धर्म पर कोई आँच नहीं आई। उनकी साधना एवं सक्रियता का फल है कि वेदपुराण जैसे स्मृतियों की रचनाएँ हुई। रामायण, महाभारत और गीता जैसे ग्रन्थों का सृजन हो सका। असन्त, ढोंग आदि किए संत के वेश में चारों तरफ फैले हुए हैं। आज सन्त नहीं रहे। जो संत है वह ज्योतिर्पुंज हैं। डॉ. 'व्यथित' जी मान्यता है कि प्यासे को कुएँ को पास जाना चाहिए।

वर्तमान समय में जातियों में आरक्षण की जो लहर फैल रही है वह कितना

कहाँ तक सत्य है ध्यान देने की आवश्यकता है। अब तो आरक्षण का भूत और भी अधिक निकृष्ठता पर उतारू होने का उपक्रम करता जा रहा है। लेखक ने वर्तमान लोक तंत्रीय चुनाव प्रणाली के दोषों का विधिवत उल्लेख किया है। लोकतंत्र के सन्दर्भ में चुनाव शीर्षक जिसमें डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने लिखा है कि-

''प्रजातंत्र का बिगुल बजा है, गालियों में बजारों में।

सँभल के रहना अपने घरमें घुसे चोर खलिहानों में।।''[15]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने 'गूँगे देश की व्यथा-कथा' का चित्रण किया है। गोरे अंग्रेजों से तो मुक्ति मिल गई परन्तु इन काले अंग्रेजों से मुक्ति मिल पाना बड़ा ही कठीन है। हिन्दी-भाषा की दीन दशा का वर्णन करते हुए लेखक बड़े ही मार्मिक ढंग से बताते हैं कि हमे सीर्फ अंग्रेजों को ही नहीं भगाना था अपितु अंग्रेजियत को भी भगाना था। हमें चाहिए कि हिन्दी के सम्मान को अपना सम्मान और अपमान का अपमान समझे। ''इस प्रकार आगे के कई खण्डों में यह देखने को मिलता है कि लेखक का मन मात्र हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए व्यग्र है। साहित्य के प्रदूषण पर भी लेखक का मन पहुँच जाता है। आगे कवि साहित्य को गंगा नदी मानता है।''[16]

इस प्रकार 'व्यथित'जी द्वारा रचित संपूर्ण 'मंथन' कृति जिसमें 54 निबन्ध हैं। पूर्णरूप से कवि के संपूर्ण जीवन को उद्धबोधित करने वाले निबन्ध है। कृति का कोई भी अंश ऐसा नहीं है, जिसे नगण्य कहा जाय बल्कि सभी निबन्धों में लेखक की कुछ स्वानुभूति तथ्य है, तो कुछ सामाजिक, राजनैतिक से संबंधित तथ्य है। समाज के सभी पहलुओं को ध्यान में रखकर डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने इसकी रचना की है। गाँव से लेकर शहर तक के सभी पर्वो-त्यौहारों तथा सामाजिक परंपरा, राजनैतिक, जातिप्रथा, भारतीय संस्कृति इत्यादि सभी पहलुओं पर 'व्यथित' जी दृष्टिपात किया है। निश्चित रूप से 'मंथन' निबन्ध संग्रह कृति आधुनिक युग की एक सफल कृति मानी जा सकती है।

संदर्भ-सूची -मंथन-(निबन्ध-संग्रह)

1) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/193. 2) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/183

3) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/181

4) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-मंथन, पृष्ठ-07.

5) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-मंथन, पृष्ठ-17.

6) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-मंथन, पृष्ठ-40.

7) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-मंथन, पृष्ठ-128.

8) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/181

9) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/186.

10) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/187.

11) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/189.

12) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-मंथन, पृष्ठ-118.

13) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/190.

14) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/195.

15) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-मंथन, पृष्ठ-50.

16) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/196.

''बुढ़ापे की लकड़ी''(लघुकथा-संग्रह)

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित 'बुढ़ापे की लकड़ी' लघुकथा -संग्रह है। इस संग्रह में कुल 55 लघुकथाएँ है। विषय की दृष्टि से इस लघुकथा-संग्रह को समृद्ध कहा जा सकता है। इन लघुकथा के माध्यम से व्यथित जी ने सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक विसंगतियों का उद्‌घाटन सहज और प्रवाभी ढंग से किया है। लेखक की रचनाओं में हमारे आस-पास का संसार है। जो कलात्मक ढंग से चित्रित हुआ है, जिनमें व्यंग्यात्मकता भी मिलती है। जिसमें समय सत्य की अभिव्यक्ति बड़े सुन्दर ढंग से हुई है यानी जो कुछ आज हमारे आस-पास घटित हो रहा है।

जैसा कि सब जानते हैं कि आकार की लघुता लघुकथा की अनिर्वायता है क्योंकि सीमित आकार में चित्रण की गुंजाइश नहीं होती। इसके लिए वातावरण तैयार करने की आवश्यकता नहीं होती, बस सीधे ही विषय पर आना होता है। यदि इस दृष्टि से देखें तो प्रस्तुत संग्रह की कहानियों में सर्वत्र ऐसा नहीं है। प्रायश्चित, झलकारी बाई, श्रद्धा, वर्षगांठ की वेद आदि लघुकथाओं में अनावश्यक रूप से परिवेश तैयार किया गया है।

'प्रायश्चित' का कथ्य इतना विस्तृत हो गया है कि वह कहानी बन गया है, जबकि लघुकथा के लिए चयनित कथ्य पर कहानी नहीं लिखी जा सकती और न तो कहानी के कथ्य को लघुकथा में समाहित किया जा सकता है। लघुकथा की रचना आकार में लघु तथा जीवन के मात्र क्षणों को पकड़ने वाली होती हैं, परन्तु अपने प्रभाव में एकदम तीक्ष्ण होती है और तीखापन ही इसका प्राण है। कथ्य में तीव्रता तभी आ सकती है जब वह यथार्थ से जुड़ी होगी। उसकी जड़ें हमारी जिन्दगी में होंगी। इस दृष्टि से देखा जाय तो डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की कहानियाँ यथार्थ, जीवन की विसंगतियों, विद्रूपतों के चित्रांकित करती है। भूख, गरीबी, बीमारी, बेचारगी, लाचारी आदि संवेदनाएँ जगाती है। इन क्षणों में किसी की

अनुभूति क्या होगी इसे सहज ही घोड़ीवाला, फोटोग्राफर, अनुष्ठान, बुढ़ापा, राज़ जैसी ही लघुकथाओं में देखा जा सकता है।

डॉ. शकुन्तला कालरा का कथन है कि ''सृजन की विविध विधाओं में लघुकथा का अपना महत्व है। यह एक स्वतंत्र विधा है। इसमें जीवन के किसी एक प्रसंग, खंड, घटना या अंश की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, जो समकालीन जीवन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिबिंत करती है।

व्यथित जी की लघुकथाओं में जीवन गत सचाईयों पर बल दिया गया है। इसमें काल्पनिक यथार्थ नहीं है 'ईमानदारी का ईनाम' में आज के युग में ईमानदारी के यर्थाथ मूल्य को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है।

सामाजिक विषयों के अतिरिक्त राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक विषय भी उठाए हैं। 'भ्रष्टाचार की गंगा', 'कानून का डंडा' प्रशासन तंत्र से जुड़ी लघुकथाएँ है। प्रशासन तंत्र में पुलिस की मुख्य भूमिका होती किन्तु यहीं भ्रष्टाचार, धाँधली ही पनपती है। प्रशासन तंत्र की विभिन्न परतों को खोलती इन कथाओं में राजनीतिक-दूषित-व्यवस्था का देश है।

समाज में व्यात धार्मिक अंध-विश्वास और कर्मकाण्ड कैसे दूषण फैलाते हैं- इसको उद्घाटित करती है-अनुष्ठान और आखरी साध।''[1]

चाहे जो भी विषय हो अनुभूति की तीव्रता लघुकथा की अनिवार्य शर्त है। बिजली की तार की तरह वैचारिक चेतना को झटका देनेवाली लघुकथाएँ -'कोई नहीं है गैर,' 'झलकारी बाई', 'मोह', 'बागी सैनिक'। 'झलकारी बाई' ऐतिहासिक परिवेश से जुड़ी लघुकथा है। विषय के बाद महत्वपूर्ण तत्व है , अभिव्यक्ति कौशल भभषा की कसावट अथवा सुष्ठु शिल्प रचाव। विषय के अन्तर्गत जैसे तीव्र संवेदना का होना जरूरी है, वैसे ही उसमें व्यंजना शक्ति का होना अनिवार्य है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी की कथाओं में न केवल मामिर्कता है, आक्रोश के तीखे तेवर भी है, जो व्यंग्य धर्मिता से युक्त होकर मन को अनायास कुरेदते हैं। 'बुढ़ापे की लकड़ी'

में **रमा का कथन है कि–** ''हे प्रभु मैंने तो तुझसे बुढ़ापे की लकड़ी मांगी थी ठूंठ नहीं ''[2] प्रस्तुत कथन किसी को भी आहत कर जाने में सशक्त है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की लघुकथाओं की चुभन हमको सालती है। व्यंग्यात्मक शैली द्वारा विद्रूप स्थितियों का संकेत इनकी लघुकथाओं की विशेषता है। 'आदमी और जानवर', मुझे जीना है' में व्यंग्य द्वारा व्यवस्था के दंश को प्रकट किया है ।

कहीं-कहीं पर प्रतीकों के माध्यम से विकृतियों को अंकित किया है। वैसे भी लघुकथा जैसी विधा में प्रतीक खूब फबते हैं। 'मोहपाश' लेखक की प्रतीक शैली की लघुकथा है। **जिसमें 'पतंग' के माध्यम से स्त्री की बेवफाई का चित्रण है– यह पतंग की जाति ही ऐसी है। नहीं तो कितने प्रेम से मैंने उसका किन्ना बांधा था। किन्तु वह भी उसे अपना रूख बदलने में देर न लगी।**

महत्वपूर्ण बात यह है कि लघुकथा की परख उसकी संवेदना और प्रभावोत्पादकता के आधार पर ही की जानी चाहिए। शैलीगत विशिष्टता होने पर भी कथ्य की मार्मिकता के अभाव में वे हेय ही मानी जायेगी। इस दृष्टि से डॉ. 'व्यथित'जी की लघुकथाएँ जिन्दगी के तीखे सच को उजागर करती हैं। उनकी संवेदना सूक्ष्म एवं तीव्र है।

लेखक ने केवल यथार्थ को ही रूपायित नहीं किया वरन् उसे सही रूप देने का भी प्रयास किया है। 'कोई गैर नहीं', 'विधर्मी' ऐसी ही लघुकथाएँ है। डॉ. 'व्यथित' जी समाज की भटकन को शब्द देकर चुप नहीं हो जाता वह अपने अभीष्ट को भी अंकित करता है। इसी कारण से इन लधुकथाओं में सर्वत्र यथार्थ का ही चित्रण नहीं है। यथार्थ के अंधेरे में आदर्श का उजाला भी है। 'विश्वास की जीत' और जय प्रकाश का 'बिहार' ऐसी ही विशिष्ट लघुकथाएँ हैं।

लघुकथा पर पूर्णरूप से दृष्टिपात करते हुए **हरपालसिंह अरुष ने लिखा है कि** –''लघुकथा का आंगिक परीक्षण करने के लिए तीन बातों पर विशेष ध्यान रखना

पड़ता है। भाषा, उद्देश्य, अभिव्यक्ति इनके अतिरिक्त लघुकथा में अन्य संयोजन या तो होते ही नहीं यदि होते भी हैं तो उनका विशेष महत्व नहीं होता। जैसे चरित्र-चित्रण या चरित्र-विकास की वहाँ सम्भावनाएँ हैं ही कहाँ। यदि ऐसी वहाँ सम्भावना है तो उस लघुकथा को कहानी में विकसित हो जाना चाहिए। जहाँ तक लघुकथा के अध्ययन की बात आती है, उसमें सर्वप्रथम लक्ष्य को ध्यान में रखा जाना स्वीकार्य है। यह तो सुनिश्चित है कि लक्ष्य सहज एवं सार्थक एक साथ हो। वह सहजता जिसमें सार्थकता का अभाव हो, लक्ष्य की चमक-दमक को दीप्त नहीं कर सकती, इसी प्रकार असहज सार्थकता बोझिल लगने लगेगी। इस प्रकार लघुकथा के लक्ष्य के क्षेत्र में द्वन्द्व का स्थान प्रमुख रहता है। जैसे व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व अतीत और वर्तमान का द्वन्द्व और संस्कार और तर्क द्वन्द्व।

इस द्वन्द्वत्माकता में संघर्ष जैसी प्रवृति न होकर पाठक को झकझोर देने की क्षमता होनी चाहिए। रही बात भाषा की, यदि लघुकथा की भाषा में अतिरिक्ति क्षमता न होकर वही कहानी की भाषावली लिखीत होगी तो बहुत अच्छा कथ्य भी निष्प्रभावी हो जाएगा। अत: भाषा में प्रवाह, शब्द-संयोजन, एवं कथन चातुरी एक साथ चमत्कार प्रस्तुत करें जिससे कथा का प्रभामण्डल दीप्त हो उठे। अभिव्यक्ति को सार्थक करने के लिए यह ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि सहज और स्वाभाविक रचना प्रक्रिया के अन्तर्गत यदि यथार्थ के धरातल पर बात घटित होती है तो अभिव्यक्ति को सहजता साधिकार प्राप्त हो जाती है। उसमें वस्तु, शिल्प और मिलकर रचना को मुखर अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। इतना कुछ विचार करने पर भी लघुकथा की एकदम पहचानने में जो बात सामने आती है, वह इस प्रकार कही जा सकती है - लघुकथा में रूपाकार की लघुकथा, विवरण में संक्षिप्तता, संवेदन और कथ्य की सघनता आवश्यक है।''[3]

इस प्रकार लघुकथा कि भाषा उसका आका उद्देश्य के अलावा चरित्र चित्रण इत्यादि की संभावनाएँ कहाँ किस रूप में होती हैं, इस तरफ पाठकों का ध्यान तो

अरुष जी ने आकर्षित तो किया ही है। साथ ही साथ लघुकथा के लिए संक्षिप्तता, संवेदनशिलता थोड़े में बहुत कुछ कहने की क्षमता इत्यादि पर भी ध्यान दिया है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की लघु कथाएँ व्यर्थ की पेचीदगी, अतिरिक्त कसावट, शिल्प-प्रदर्शन और वाद-वर्गीकरण से दूर, समाज, राजनीति, शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्रों में आयी विसंगतियों पर सहज होकर प्रहार करती है। विरोधाभासों की प्रच्छन्नता की परत-परत उधेड़कर रख देती है। जीवन की अनुभूति अन्य स्थितियों का चित्रण इस निराले ढंग से किया है कि साधारण-असाधारण को प्रस्तुत करके ऐसा अन्तर्द्वन्द्व उभार देती है कि भीतर की चटकान नए आदर्श को पुराने के ऊपर स्थापित करने के लिए आकार प्रदान कर देती है। 'विधर्मी' लघुकथा में पंडित दातादीन के सम्मुख विधर्मी मात्र लड़का है। धार्मिक विद्वेष नहीं, सम्प्रदायगत भेदभाव नहीं। दो बातें हैं, प्रथम सहज, स्वभाविक करूणा एवं सहानुभूति द्वितिय है अपना धर्मपालन। अनाथ को संरक्षण देना। इस लघुकथा-संग्रह में विचार धारा पर, यर्थाथ पर, साथ ही साथ समाज पर भी एक तीक्षण प्रकार है। आदर्श की पुरानी-प्रचलित मान्यता से हटकर नई स्थापना है।

गीता में कहा गया है- कर्मण्येवाधिकारस्ते ...। हम सभी इस श्लोक को मंत्रजाप की भाँति रटते जा रहे हैं। और दूसरों को नसीहत देने के लिए तो यह रामबाण है ही। ऐसे कितने लोग हैं जो कर्म को जीवन का उद्देश्य मानकर जीते हैं। कर्म का तात्पर्य सत्कर्म से लेकर खेती-किसानी करने वाले या पशुपालन करने वाले कठोर शारिरीक श्रम के अभ्यासी ऐसे अनुभव के अभ्यासी होते हैं। **प्रेमचंद'जी का कथन है कि-**''किसान और उसके बैल को बुढापा नहीं मौत ही हाड़ पेरने से मुक्ति दिलाती है, कितना सत्य है। 'कर्मवीर' का महेश्वर पगहा तुड़ाकर भागी गाय के रस्से को पकड़कर खींचना चाहता है और पटखनी खाकर खाटगोड़ने की छटपटाहट से मुक्ति पाता है। दायित्व-बोध और कर्म ही पूजा को सार्थकता करने वाले 'कर्मवीर'की झलक मस्तिष्क को झंकृत करदेने में सक्षम है। इस कथा की

विशेषता है द्वन्द्व से परे होना। प्राय: द्वन्द्वहीन लघुकथा को स्वीकार करने में साहित्यालोचक हिचक का अनुभव करते हैं या तो यह लघुकथा के आरंम्भिक दौर में लिखी गयी होगी या 'व्यथित'जी ने मूल्यों के क्षरण की गम्भीरता से आहत होकर इस लघुकथा की रचना की है। मूल्य हीनता वातावरण में कुछ आलोचकों, समीक्षकों को यह लघुकथा यथार्थ से दूरी पर खड़ी हुई लग सकती हैं, परन्तु मूल्यों का क्षरण (सत्कर्म और सत्परिश्रम जैसे मूल्यों का) रचनाकार को उद्वेलित कर ऐसी रचना के लिए बाध्य कर दे तो किमाश्चर्यम्।''[4]

प्रत्येक व्यक्ति के जिवन में संस्कार का बहुत बड़ा महत्व होता है और यह संस्कार बालकों के जन्म से ही प्रारंभ हो जाता है। इन्हीं संस्कारों से समाज का गठन होता है। अगर व्यक्ति के उत्तम संस्कार हों तो वह दानव से देवत्व की उपाधि से विभूषित किया जाता है। लेकिन यदि ठीक इसी के विपरीत व्यवहार हो तो, देव होते हुए भी उसे दानव के संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इसी महत्ता का संकेत देते हुए **डॉ. राष्ट्रबन्धु लिखतें हैं कि–** ''जन्म के पश्चात् प्रत्येक बालक का दूसरा जन्म होता है जिसे हम संस्कार के नाम से जानते हैं। इसी संस्कार से मानव समाज का गठन होता है। उत्तम संस्कारों से वह **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का पोषक बनकर दैवत्व को प्राप्त होता है और यदि उसे हलके व दूषित संस्कार मिले तो वही बालक सृष्टि का सरदर्द बनकर सबको पीड़ा पहुँचाने की सुखानुभूति प्राप्त कर धरती को नर्कागार बना देता है।''[5]

'बुढ़ापे की लकड़ी' में लघुकथाएँ इसलिए दी गई है क्योंकि नवयुवकों के पास समय का अभाव हैं। लंबी घटनाएँ पढ़ने का समय उनके पास नहीं है। स्वकथन में **डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने लिखा है कि** ''उपन्यास जीवन के प्राय: संपूर्ण आयामों को अपने में समेटता है, कहानी जीवन के एक बड़े आयाम को, तो 'लघुकथा' जीवन के एक नितान्त छोटे आयाम को अपने अन्दर समेटती है।

कथा-छल से डॉ. व्यथित ने नवयुवकों को राष्ट्रीय चरित्रों का परिचय इस

संकलन में दिया है। झलकारी बाई की जीवनी की लघुकथा के आकार में ही सफलता से चित्रित करने की क्षमता और योग्यता रखते हैं। डॉ. जयसिंह व्यथित एक मुद्दे की बात की तथाकथित छोटी जातियों के लोग हीन भावना न पालें, अपने काम से वे अपने महत्व का निर्धारण करें।

झलकारी बाई गर्व से सीना तानकर बोली-हाँ हाँ मैं झाँसी पर मिटनेवाली झलकारी बाई कोरिन हूँ। तेरी जैसी नमक हराम नीच गद्दार नहीं''[6]

एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत है ''राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत उनकी अन्य कहानियाँ है, मातृशक्ति, शिकार, विश्वास की जीत, बागी सैनिक आदि। सांप्रदायिकता के बारे में डॉ. व्यथित जी ने जो तर्क दिए हैं, वे अकाटय हैं, मैंने किसी विधर्मी को नहीं, मुसीबत में फँसी अपनी विद्यार्थिनी को उसके विश्वास को पनाह दी है।''[7]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा संकलित कहानियों में अत्यंत सजीवता पूर्ण ग्रामीण परिवेश की अभिव्यक्ति हुई है। शब्द संयोजन ऐसा सुगठित है कि घटना, चित्रित हो जाती है। इसी संदर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत है-''सुबह होते ही देखने वालों का ताँता लग गया। बन्दरिया पेड़ से बच्चे के शव के साथ उतरी। अपनी जगह पर जाकर बैठ गई किन्तु आज उसकी चाल-ढाल में कुछ अजीब सा परिवर्तन नजर आ रहा था। वह एकदम सुस्त और अचेत थी। फिर भी बच्चे को सीने से चिपकाये एक हाथ से पकड़े थी तथा दुसरे से उसके शरीर को सहला रही थी। अब पास आनेवालों को खौ-खौ कर भगाने, अपनी वेदना जताने या क्रोध बताने का उसे होश न था। थोड़ी देर बाद बच्चे के शव को सीने से लगाकर वह लेट गई और लेटी ही रह गई। लोग पास आकर हिलाये-डुलाये लेकिन सब बेकार यहाँ तो ज्योति में ज्योति मिल गई थी।''[8]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने 'बुढ़ापे की लकड़ी' में सामाजिक परिवेश और उसकी समस्याओं पर भी प्रभावी लघुकथाएँ इस संकलन में नवयुवकों को अपने

अच्छे संस्कार सुधारने की प्रेरणा देती है। 'बुढ़ापे की लकड़ी' शीर्षक कहानी आज के नवयुवकों की उत्छृंखलता पर मार्मिक प्रहार करती है-''इसी दिन के लिए तो मैंने इतने सारे पत्थर पूजे थे। हे भगवान ! तूने मेरी प्रार्थना तो जरूर सुनी, मेरी गोदी हरी तो की किन्तु उस ठूँठें पेड़ जैसी जिसके होने का तो होता है किन्तु छाया और फल का नामोनिशान नहीं। हे प्रभु! मैंने तो तुम से बुढ़ापे की लकड़ी माँगी थी ठूँठ नहीं।''[9]

थोड़े में बहुत कुछ कहने की कला सब में नहीं पाई जाती। यह कला विरले व्यक्तियों में ही प्राप्त होती है। जिसमें से डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी एक हैं। **इसी संदर्भ में अनिरूद्ध सिन्हा का कथन है कि-** ''यहाँ देखें जैसा कि लघुकथा के बारे में कहा गया है कि कम से कम शब्दों में बड़ी से बड़ी बात कहने की क्षमता रखती है यह। सहज या स्फूर्त अभिव्यक्ति में संवेदनशीलता, अनुभव, कल्पना या व्यक्ति रूचि की कोई खास प्रधानता नहीं होती। कथानक स्वयं विकसित होता है। कैन्द्रिय यथार्थ स्वयं मुखर हो जाता है।''[10]

'आदमीयत' लघुकथा में भी ऐसी ही बात है। सीधे-सीधे पढ़ ले तो महज एक घटना की तरह लगेगी वहीं दूसरी ओर इसके केन्द्रिय भाव पर जाते हैं तो यह चमत्कृत करने लगती है। अंत में यह दो धाराओं में विभाजित हो जाती है। प्रथम-भय, द्वितीय आस्था है। वर्तमान समय में हर व्यथित का हृदय घृणा, कुंठा और आक्रोश से भरा हुआ है। विराज जीवन-दर्शन का कोई महत्व नहीं रहा। छोटी सी छोटी घटना पर सिहर स्वयं को समय के हवाले कर देता है आदमी। इस लघुकथा में एक अपरिचित आता है और थोड़ी सी राहत का प्रभोभन देकर सारे सामान को अपने अधिकार में कर लेता है। वहीं अपरिचित जब फिर सामने आता है तो कथा नायक के भीतर यह भाव सिर उठाने लगता है कि नहीं, अभी भी आदमीयत मरी नहीं है, अभी जिवीत है।

दूसरा उदाहरण प्रस्तुत है। वास्तव में यह सब आदमी के कमजोर होने का

प्रमाण है। संशय रूपी लकवा से लकवाग्रस्त है। समय की विषमता ने जि कारूणिक विभीषिका की सृष्टि की है उससे पुरा वर्तमान परिवेश पीड़ित है। आदमी मुक्ति के विषय में सोचता है, और करता कुछ नहीं। फिर भी इसके आस्था को थोड़ा बल मिलता है, उम्मीद के दीये झिल मिलाते हैं कि अभी सोच मरी नहीं है।

लघुकथा संग्रह 'शिकायत' में शिक्षक एवं छात्रा के अत्यंत तीव्रतम क्षणों की अनुभूति एवं मनोवेगों की अभिव्यंजना है। एक छात्रा की व्यक्तिगत परेशानी है। छात्रा अपनी परेशानियों को जाहिर करना नहीं चाहती। नतीजा यह होता है न तो वह नियमित होमवर्क कर पाती है और न ही समय पर क्लास आती है। वर्गशिक्षक परेशान होकर उसे वर्ग खण्ड से बाहर करना चाहता है। शिक्षक आदेश देता है कि तुम क्लास से बाहर चली जाओ। छात्रा क्लास से बाहर नहीं निकलती हैं। वर्गशिक्षक इसकी शिकायत विद्यालय के प्रधान से करता है। छात्रा को कठोर से कठोर दंड देने का आग्रह करता है। मगर विद्यालय के प्रधान ऐसा नहीं करता है। आरोपित छात्रा के साथ बहुत ही नरमी के साथ पेश आता है। उस छात्रा की समस्याओं को जानने की कोशिश करता है। छात्रा पर मनोवैज्ञानिक दबाव पड़ता है और किताब की तरह विद्यालय प्रधान के समक्ष खुल जाती है। विद्यालय प्रधान सहज ही समस्या का समाधान खोज निकालता है। इस लघुकथा 'शिकायत' का मूल स्वर निराशा में भी आशा के प्रति आस्थावान होना है। कोई भी रास्ता उतना कठिन नहीं है जितना मान लिया जाता है।

लघुकथा लेखन की पहली शर्त है कि लघुकथा में दृष्टिकोण को विकसीत करना । लघुकथा में कम शब्दों में लेखक को बड़ी से बड़ी बात कहनी पड़ती है। छद्म और भ्रम की कोई गुंजाइश नहीं होती। ऐसा करने से भटक जाने का खतरा रहता है। **इसी संदर्भ में स्वयं लेखक का कहना है कि–** ''लघुकथा अपने सम्पूर्ण परिवेश में अब हिन्दी साहित्य में आणविक शक्ति के प्रंचड तेज का ज्वालामुखी है। वह क्षण दो क्षण में ही पाठक को अभिभूत करने की अदम्य शक्ति का कल-कल

करते झरने का स्त्रोत है और आज यही इस अणु-युग की पुकार भी है।''[11]

डॉ. 'व्यथित'जी ने जैसा कहा है वैसा सार्थक करने का प्रयत्न किया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है लघुकथा की विभिन्न शर्तो के अनुरूप स्वयं को संभालकर चलने की छटपटाहट नज़र आती है। सरल साहज्य इनकी लघुकथाओं का आकर्षक है। लघुकथा संग्रह में एक ऐसी ही लघुकथा है 'संकल्प' दहेज के कुत्सित जाल में माँ-बाप का छटपटाना फिर लड़की का प्रतिकार करना। लड़की स्वयं समर्थ होकर विरोध करती है, और माँ-बाप को ढाँढ़स देती है। आप चिन्ता नहीं करें। मैं स्वयं उस योग्य हो गई हूँ पढ़ी-लिखी हूँ। नौकरी करती हूँ। अपने निर्वहन की सारी क्षमता मुझमें है। किसी वर को खरीदने की जरूरत नहीं है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी को एक ओर जहाँ आज के यथार्थ की गहरी अनुभूति आकुल करती है, वहीं दूसरी ओर मस्तिष्क एक नयी राह सृजन के लिए उकसाता है। यही तो लेखन की सार्थकता है। विसंगतियों को सीर्फ प्रकट कर देने से क्या लाभ ? वर्तमान परिवेश में जीनेवाला संवेदनशील रचनाकार इससे परहेज नहीं कर सकता।

इनकी संपूर्ण लघुकथा 'बुढ़ापे की लकड़ी'में संवेदनाओं को ही महत्व दिया गया है। इसी संदर्भ में **प्रोफेसर हितेश व्यास का कथन है कि-** ''कवि के गद्य में संवेदना सघन होती है, ये सब गुण डॉ. जयसिह 'व्यथित'के लघुकथा संग्रह 'बुढ़ापे की लकड़ी' में सन्निहित हैं। इस संग्रह की 55 लघुकथाओं में से दो कथाएँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, एक 'शूलधारी सुलतान' व दूसरी 'मोहपाश,' 'शूलधारी सुलतान' एक पद्य गीत की तरह काव्यात्मक रचना है। भ्रमर, शूल और कलियों को लेकर बुनी गई सुन्दर साहित्यिक कथा है। 'मोहपाश' एक गद्य गीतनुमा सरस साहित्यिक रचना है। पतंग और धागे के माध्यम से कही गई सम्बन्धों की कहानी है। ये दो रचनाएँ तो ऐसी हैं कि इन्हें यदि गीत संग्रहों में लिया जाता तो उसी विधा की लगती शेष सभी कथाओं में सघन संवेदना है।''[12]

'प्रायश्चित' हृदय परिवर्तन की कथा है। सज्ञन रमेश अपने दुर्जन भाई मुन्ना के

प्रति अन्त तक भलमनसाहत रखकर उसका हृदय परिवर्तन करता है। हालांकि हम जीवन में देखते हैं कि दुष्ट के प्रति सहृदयता रखने से उसका स्वभाव नहीं बदलता है परंतु लेखक गाँधीवादी विचारधारा के होने के कारण आज के सत्य को स्वीकार नहीं करके आदर्शवादी विचार धारा के पक्षधर हैं। कहानी का ऐसा अंत वास्तविक नहीं होने पर भी वास्तविकता बदलनेवाला है, इसलिए स्तुत्य है। 'मोह' लघुकथा एक सिद्धान्तवादी पिता की कथा है जो पुत्र मोहवश सिद्धान्तों को ताक पर रख देता है। 'प्रायश्चित' लघुकथा यदि आदर्शवादी कथा है तो 'मोह' यथार्थवादी। 'मोह' कथा लिखकर डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि वे कोरे आदर्शवादी नहीं हैं, बल्कि लेखक के समय का सच पता है। 'मुझे जीना है' एक आदर्शवाद के अंत और यथार्थवाद के आरम्भ की कहानी है।

'रस्सी' लघुकथा दर्शनशास्त्र के सिद्धान्त 'रज्जु सर्पन्याय' पर आधारित है जिसका अर्थ है रस्सी में साँप का भ्रम होना। यह एक मनोवैज्ञानिक कथा है। बचपन में सर्पदंश से हुई मित्र की मृत्यु का मानस पर स्थायी भय अंकित हो जाता है जो समय के अंतराल में अवचेतन में चला जाता है और समान प्रसंग आने पर प्रकट हो जाता है। इस कथा से डॉ. 'व्यथित'जी का मनोवैज्ञाननिक बोध दिखता है।

'शिकायत' एक सौतेली माँ के दुर्व्यवहार तथा समझाने पर उसके व्यवहार में आए परिवर्तन की कहानी है। यह कथा जहाँ इस बात की पुष्टि करती है, कि सौतेली माँ के व्यवहार में सौतेलापन होता है। वहीं इस संभावना को भी जन्म देती है कि विवेक से उसके स्वभाव में परिवर्तन भी आ सकता है।

'मातृभक्ति' देवी के प्रति आस्था की कथा है। 'श्रद्धा' धार्मिक आस्था की कथा है। 'श्रद्धा का कवच' श्रद्धा की शक्ति की कथा है, जिसके फल स्वरूप 95 वर्ष के दादाजी का संकलन पुरा हो जाता है। 'आखरी साध' एक हिन्दू मन की साध की कहानी है। चार धाम की यात्रा हो जाये और बिरादरी भोज हो जाये।

पहली साध पूरी हो जाती है, दूसरी साध अधूरी रह जाती है और अधूरी साध के साथ कथानायक की मृत्यु हो जाती है।

'सत्यम' कबीर के एक दोहे से जीवन के दिशा परिवर्तन की कथा है। 'करूणा' दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा मानने की कथा है। 'इन्सानियत' शीर्षक के अनुरूप इन्सानियत की कथा है। 'अन्नदाता' पशु के प्रति मानवीय आचरण की आर्दश कथा है। 'राज़' क्षमा की कहानी है। क्षमा मनुष्य का हृदयन्तर कर सकती है। 'कोई नहीं है गैर' साम्प्रदायिक एकता और मानवता का संदेश देनेवाली कथा है। 'आदमियत' शीर्षक के मुताबिक आदमियत की कहानी है। 'सहरा' परस्पर सहयोग की कथा है। 'चंगू भइया' एक आत्मीय प्रसंग है। 'बस' में 'व्यथित'जी ने यह स्थापित किया है कि मनुष्य का महत्व धन से अधिक है। धन की पूर्ति तो संभव है। स्वप्न की क्षति होने पर उसकी पूर्ति असंभव है। 'संकल्प' एक लड़की द्वारा दहेज विरोधी संकल्प लेने की कथा है। 'अघोरी बाबा' बाबा की आड़ में साधु बने अपराधी की कथा है।

'बिचौलिया' कहानी में कारखाने के मालिक और मजदुरों के बीच यूनियन को बिचौलिया कहा गया है, जिससें हटाने के साथ कारखाने की हड़ताल टूट जाती है तथा मालिक और मजदूर के मध्य सम्बन्ध सौहाद्रमय हो जाता है। 'नम्बर दो' भ्रष्टाचार की कहानी है। 'विश्वास की जीत' दंगाई वातावरण में साम्प्रदायिक सद्भावना और मानवीय विश्वास के जीत की कथा है। 'पिछला दरवाजा' में व्यंजना का चमत्कार है। 'अर्थी' एक सर्वदा सुखी संसार की दु:खान्त की है। बारात की जगह अर्थी निकलती है। सौभाग्य के दुर्भाग्य में बदलने की त्रासदी है। 'बागी सैनिक' प्रतिशोध की भावना से डाकू बन जाने तथा उसकी जन-हितैषिता के कारण डाकू हो जाने के बावजूद सर्वप्रिय होने की कथा है। 'परताईन बुआ' एक बाल विधवा की पीड़ा और त्याग की कथा है। यह समाज 'परताईन बुआ' को अभिशप्त जीवन के सिवाय कुछ नहीं देता किन्तु वह अपना सर्वस्व समाज को

समर्पित कर अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत करती है। 'बुढ़ापा' अहसान फरामोश औलादों द्वारा की गई वृद्ध पिता की उपेक्षा कथा है। 'विधर्मी' साम्प्रदायिकता से अधिक मानवता को महत्व देने की कथा है। 'दारु का देत्य' मद्यपान विरोधी कथा है।

'राम का घर' कथा से यह पता चलता है कि स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती के बावजूद जातिवाद तथा दलित जातियों में हीनता बोध और भय समाप्त नहीं हुआ है। 'ईमानदारी का इनाम' उस मानसिकता की कहानी है, जिसकी दृष्टि में उपयोगिता समाप्त होते ही मनुष्य का महत्व समात्त हो जाता है। 'अनुष्ठान' पाखंडी पंडित की पोल खुल जाने की कथा है।'मैं नहीं मरूँगी' एक करूण कथा है, जिस में अगंभीरता से कहा हुआ एक वाक्य एक बच्ची की नियति बन जाती है। 'आदमी और जानवर' कथा में जानवर को आदमी से श्रेष्ठ बताया गया है, जो मालिक के प्रति वफादार रहता है, जबकि आदमी जिस थाली में खाता है उसी में छेद करता है, 'शिकार' एक ऐतिहासिक प्रसंग है। 'ठाकुर का घर' धर्मान्तरण की व्यथा कथा है। 'कानून का डंडा' में पद का प्रभाव बतलाया गया है। पद समाप्त होते ही प्रभाव समाप्त हो जाता है। 'फिलासफर साहब' में उनकी इसी प्रवृति से रंजन किया गया है। 'चुटकी' उपदेशात्मक कथा है। 'कुर्सी' पेन्शन भोगियों की पीड़ा कथा है। 'स्वर्ग से वापसी' प्रायश्चित कथा है और 'बुढ़ापे की लकड़ी' वृद्ध माता-पिता के स्वार्थी द्वारा सेवा न किये जाने और तड़प-तड़प कर मरने की करूण कथा है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि 'बुढ़ापे की लकड़ी' डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित एक लघुकथा संग्रह हैं। जिसमें 55 लघुकथायें संग्रहित किये गये हैं। जैसा कि इनकी अन्य गद्य रचनाओं में देखा जाता है कि सामाजिक, राजनैतिक विसंगतियों का चित्रण वे अपनी लेखनी से करते आये हैं। ठीक इसी प्रकार इस कृति का मुख्य आधार सामाजिक पारिवारीक, आर्थिक, धार्मिक, तथा राजनैतिक विसंगति है, शीर्षक चाहे जो भी हो। ये लघुकथाएँ यथार्थ जीवन की

विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के साथ-साथ जीवन के यथार्थ को भी चित्रित किया गया है। इन कहानियों में कल्पना का अभाव है और जीवनगत् सचाईयों की भरमार सामाजिक विषय के अतिरिक्त राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक विषयों पर ही इसमें रचनाएँ प्रस्तुत की गई है।

विषय चाहे जो भी हो लेकिन अभिव्यक्ति को ही स्थान मिला है। लघुकथा के बारे में स्वयं व्यथित जी का ऐसा मानना है कि आज आधुनिक युग में लोगों के पास समयाभाव अधिक है, इसलिए लम्बी रचनाएँ पढ़ने का न तो किसी के पास समय है और न तो रूचि। इस कृति में राष्ट्रीय भावना से जुड़ी हुई कुछ रचनाएँ जैसे- मातृशक्ति, शिकार, विश्वास की जीत तथा बागी सैनिक आदि। साथ ही साथ ग्रामीण परिवेश की व्यक्ति, सामाजिक परिवेश की व्यक्ति इत्यादि पर भी दृष्टिपात किया गया है।

संदर्भ–सूची

1) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/130.
2) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी- बुढ़ापे की लकड़ी, पुष्ठ-66.
3) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/127.
4) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/128.
5) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/133.
6) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी- बुढ़ापे की लकड़ी, पुष्ठ-15.
7) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी- बुढ़ापे की लकड़ी, पुष्ठ-47.
8) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी- बुढ़ापे की लकड़ी, पुष्ठ-60.
9) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी- बुढ़ापे की लकड़ी, पुष्ठ-66.
10) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/135.
11) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/136.
12) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/125.

''देस कै माटी''(अवधी लघुकथा संग्रह)

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित 'देस कै माटी' एक अवधी कृति है। इसमें कुल 36 कहानियाँ है। इसमें छोटी-छोटी कहानियों का विचित्र खजाना है। अवधी का परिमार्जित रूप लोक प्रचलित शब्द, लोकोक्ति और मुहावरों से लैश भाव भंगिमाओं से ओत-प्रोत भाषा कवि की अपनी विशेषता है। पुस्तक की छपाई खूब सुन्दर है, कागज भी उत्तम है। कथा वस्तु सरस है। इन सभी कहानियों को पढ़ने से लगता है कि अधिक्तर कहानियाँ कवि के जीवन के अनुभवों से आई है। आज समाज में अनेक संत्रासों ने जन्म लेकर अपना प्रभाव चारों ओर फैला दिया है। दहेज, ठगी, चोरी, घूसखोरी, बेईमानी, जातिवाद, भाई-भतिजावाद, सगावाद और वर्गवाद आदि कु-प्रथाओं से समाज पूर्ण संत्रस्त हो चुका है। आज का युवा वर्ग दर-दर की ठोकरें खाता इन दलदलों में फँस जाता है। इनसे उबरना कठिन समस्या है। आज के युवकों का बल पौरूष पचड़े में पड़ जाता है। 'व्यथित'जी की इन कहानियों से उबरने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

प्रथम कहानी 'पुरुषार्थ कै करिस्मा' है। इस कहानी में डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के गाँव में पीली नदी की भयावह स्थिति पर लिखी गई है। रचनाकार ने वास्तव में इस कहानी में सत्य तथ्य को समाहित कर रखा है। 'सेवा त्याग' में रामधानी सिंह के भले व्यक्तित्व को लेखक ने भली भाँति उजागर किया है। वह व्यक्तित्व हर जन-मन का अपना प्रिय पात्र है। 'जातीयता कै जहर' कहानी में जन-मन के प्रिय पात्र सन्त महात्मा होते हैं। गुरू के आदेश का पालन तो शिष्य करते हैं। किन्तु राजनीति में वर्गवाद, सम्प्रदायवाद उसे भी भुला देने वाला निकला। शिष्यो की बात का ठनाका जब गुरु के हृदय पर लगा तो वे सोचते ही रह गए। दम्भ के विषचक्र में फँसा नवयुवक अपने पिता को देखकर लज्ञित होता है। वह उसे अपना नौकर बताकर दम्भ के विषच्रक में फँस जाता है। आखीर में आन्जनेय की क्षमा याचना और पैर पकड़ना देख के पिता को क्षमा कर देता है।

'दर्द कै दास्तान' कहानी में परवतिया अनपे धर्म-कर्म का निर्वाह किस ढ़ंग से करती है। कितने दिन वह पति की राह देखती रहती है। अन्त में डॉ. 'व्यथित'जी ने विचित्र ढंग से दोनों का परिचय कराया है। 'चतुर चरवाहा' कहानी में अनेक लोकोक्तियाँ और मुहावरों का प्रयोग हुआ है। गप्पीलाल चरवाहा झूठों का सिरताज हुआ और एक लाख रुपया व सम्मान-पत्र प्राप्त कर जन मानस को अचम्भे में डाल देता है। इसी कहानी से एक उदाहरण प्रस्तुत है -

''आजु से पचास साल पहिले क बाति आ पंचउ, आजु ले हम किहिउ से कहे नाईं। आजु मौका लाग बा हम कहब जरूर, जनता चुनै चाहे जवन करै, लेकिन हम्मै त विसवास बा कि हमारि बात औ हमरी जिनगी क दर्द आप सभे जरूर सुनि सकि हैं त सुना हमार बाप अउ करोड़ी मल कै बाप दुइनउ जने से दाँत काटी रोटी रही। आमने सामने घर रहा। साथे साथे खेलते खात रहेन। जरा सोचैं खेलै के सौकीन रहेन। वइ जुआ जेलइ म आपनि पूरी सम्पत्ति हारि गै ओन का फुटपाथ पे आवै क परिगा। हमरे पिता जी दोस्ती क फर्ज निभायेन, ओन का अपने हबेली मा शरण दिहेन, अउर बैपार करै वदे दुइ लाख रूपियउ दिहेन। लकिन पंचउ हम अपने दुर्भाग्य क काउ कही, हमरे पिताजी कार दुर्घटना में मरि गै, अउ सेठजी के पिता कै नियतिनि बिगड़ि गै। वइ हमैं अउ हमरे परिवार का हाथ पकरि के सावन भादउँ के महीना मा निकारि दिहेन। हमारि माई यदि सदमा का सहन करै म असमर्थ मरि गै। हम बदनसीब का दर-दर क ठोकर खाइ बरे छोड़ि गै। भला होइ गाउँ, घर, पास पवस्त कइ कि हम का पगले की नाईं घुमन्तू का कुछु खाई पियइ के देवा किहेस। एइसनै हम आपन पेट पालत अही। अब आप सभे सेठजी से पूछ्ई कि का ई सच न होइ ?''[1]

'विधायक कै विधवा' सत्य कथा है। लेखक लखनऊ जाते समय बस में इस घटना को देखा और कहानी बनाकर रख दिया। 'बिराग' कहानी में सन्त की अवहेलना से भक्त के हृदय में विराग जग गया और वह किसी तत्व की खोज में निकल पड़ा। इसी तरह से प्रत्येक कहानियाँ उत्तम शिक्षा से भरी पड़ी हैं। पछतावा, घासी कै रोटी, नमक

हलाल, न्यायतंत्र, साख, पितरपक्ख कै तरपन, रक्षासूत्र, सम्पादक कै पीरि, पगड़ी क कबरि, सभी कहानियों में एक न एक दिशाबोध मिलता है। यहि पुकार से अहम कै रोग, मरजाता कै बाध, रामजी कै हारि, जमानत, भूल्याजिनि भाय आ, देस कै माटी, सिंहगढ़ चाही, माटी कै माया सभी कहानियों में ऐतिहासिक साहित्यिक परिचर्चा की गई है। सभी कहानियों में एक नई बात कही गई है जो हृदय पर चोट करती है।

आज आधुनिक युग में एक तरफ लोग अपनी भारतीय संस्कृति को जहाँ भूल रहें हैं, वही दूसरी तरफ बड़े गर्व से पाश्चात्य संस्कृति के तरफ आकर्षित ही नहीं बल्कि उसे पूर्णरूप से स्वीकार कर रहे हैं। जिसमें माता-पिता, भाई-बहन आदि के अलगाव की बात सामने आती दिखाई देती है। किसी समाज में ही नहीं बल्कि भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में मातृऋण को समाप्त कर पाना संभव नहीं है। आज के युग में बहुत कम पुत्र ऐसे होते हैं, जो माँ-बाप की अहमीयत को समझतें हैं और मातृऋण के कर्ज को चुकना चाहते हैं। इस संदर्भ में **डॉ. रामदेव शुक्ल का कथन है कि** -''एह धरती के कोख में अइसन बेटा कबो कबो जनमे लें जे माई के दूध आ अपने 'देस कै माटी' के करजा उतार के आपन परलोक बना लें। आदमी के ऊपर ओकरे जाति के, गाँव के आ सब से बडहन देस कै माटी कै रिन होला, जवना के चुका देला सपूत, आ तारि देले अफने कुल-गोत के।''[2]

अवधी भाषा में पद्य का बाहुल्य तो है, लेकिन गद्य साहित्य बहुत अल्प मात्रा में प्राप्त होता है। खास करके इस भाषा का महत्व तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस' से इतना बढ़ गया कि इस भाषा से सायद ही अनभिग्ज्ञ होगा। इस भाषा के महत्ता को स्पष्ट करते हुए **डॉ. रामदेव शुक्ल आगे लिखते हैं कि**-''अवधी ऊ भाषा हउए जवने के 'गोस्वामी-तुलसीदास' अपने लेखनी से छू के अमर कइ दिहले। अपने काव्य के आधार बना के ऊ जवन भवन बनवलें ओह में आजुवो संसार भर के विद्वान ज्ञान आ राम भक्ति के चरणोदक पावे लें। ओही अमरित भाषा में 'अवध कै माटी' के जनम भइल बा। हिन्दी के कवि के इ अवधी-पूजा बा बंदना बा।''[3]

'देस कै माटी' पुस्तक के आकार-प्रकार उसमें संग्रहीत सामग्री तथा संपूर्ण पुस्तक में दहेज, बेईमानी, शोषण, घुसखोरी, जातिवाद आदि विषयों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसी ओर संकेत करते हुए **डॉ. रामदेव शुक्ल लिखते हैं कि-** ''एह किताब में छोटहन-छोटहन कहानी-कथा बाड़ीसन जवना में कथाकार समाज के शोषित गरीब आ दरिद्र किसान न किसानन के ओर सहानुभूति बा, हमदर्दी बा।''[4]

लेखक का ऐसा मानना है कि, लघुकथा में कम से कम शब्दों का समावेश करना चाहिए, लघुकथा की बनावट ऐसी होना चाहिए। जैसे कौड़ी में कोई चित्रकारी की गई हो। 36 कहानियों के इस लघुकथा संग्रह की रचना विभिन्न विषयों को ध्यान में रखते हुए की गई है। कहानियों के कथावस्तु इत्यादि अवधी मुहावरों, लोकोक्तियों से ओत-प्रोत है। इसी संग्रह में 'पितरपख कै तर्पण' जहाँ एक तरफ काशी के पंडों की हकीकत सामने रखी गई है, वहीं दूसरी कहानी 'दहेज क़े दानव' में दहेज विरोधी खिलाफत की गई है। इस प्रकार इस लघुकथा में संग्रहित अअनेय् लघुकथाओं में भी लेखक ने सामाजिकता को ध्यान में रखते हुए समाज के कुरीतियों का पर्दाफास किया है।

ई कहानी दहेज के रिवाज के खिलाफत बडले बा जवन ठ्कुरायत के झूठ घमंड के टुक्का दुबका कर दे तिया। ईहवे 'पगडी के कबर' आ ओकर नायक हउएँ ठाकुर दुर्ग विजयसिंह जिनका बहुत दिन बाद भिन्नत-मनौती से लड़िका होखेवाला बा। महरिन के मुँह लटकल देख चिहुंक के पूछत बाडें- 'का बात है- मंहरिन?' कछु नाही सरकार। घर में बारात आइल बा।' ठाकुर के बुझाता कि बेटी के बियाह से उनके पगडी के शान गिर जाई । ठाकुर ओही लहजा में बोललन-

''जा ठकुराइन से काहेधा कि बारात वापस लउठाइ देई।''

ठकुराइन के हाँथ ममता के बहाव में ठहरात ना बा। ठाकुर के हुकुम आ ना पालन करि पबली। धीरे-धीरे मोहिनी थोड़ा बड हो गइल बाकिर ठाकुर के मन ना पसिजल। ऊ देखले रहलें कि बेटिन के बाप समधी के गोड पर आपन पगडी धरि के घिघियात रहें आ लडिका के बाप होकर मार पे पगड़ी फेंकि दें सब। ई नजारा इन के मन में कांट

अइसन खरके।

''पगड़ी के कबरि'' कहानी में- एक रात मन में सोचलें कि भाई-बेटी के एके झटका में खतम करि के गडही खोद के गाड दीं। हाथ में कुदार आ कान्हे पर सूतल नन्हीकी बेटी के उठाके बाहर निकसलन। नीचे बिटिया के सुता के गडहा लगले खोदे। खोदत खोदत थकि गइडे पसेना से तर हो गइले आ जब थकि के बइले पसेना से तर हो गइले आ जब थकि के बइठ गइलें तबले मोहिनी जाग। गइल। बाप के लस्त पस्त देखि के पुछलस- ''बाबूजी इ काउ आ। ई खून अउल पसीना केस ? ठाकुर के आँख भरि आइल, बोललन-''

'बिटिआ कबर खोदत रहे' 'केकरे बरे बाबूजी ?' 'तोहरे बरे बिटिया बिटिया लोललि-'अच्छा तउलावा आपन कबल हम खुद खोदव। आप आरम से बइठै। आप का बहुत तकलीफ होउ लहीं बा।'

ठाकुर के ममता के बाँध टूटि गइल, 'तू तौ हमारि निक्कू बिटिया अहू ना। तोहार नाईं बिटिया, यहि पगड़ी के कबर खोदत रहे।' एतना कहि के पगडी, गड़हा में डारि के भठिया दिहले आ मोहिनी बेटी के कान्हें उठा के धरे लौटि अउलन।

सत्यधर शुक्ल का कथन है कि -'''देस कै माटी' मां सबई कहानी हिरदै का झकझोरि देइ वाली है। यह बात अलग है कि सबकी भावभूमि भिन्न भिन्न है, मुला सबकी अलाप-धुनि यक्कै है। कुछ कहानी ऐतिहासिक कुछ राजनीतिक, भावभूमि बटोरे हैं, तउ कुछु सत्य घटना और कल्पनौ पर आधारित हैं। मुल सबकी तान है राष्ट्रीयता के रंग मां रंगी भई। फिरिउ अपनि रूचि औरू पसन्द है। हमका ई मां की तीनि कहानी तउ बहुतुइ ढेर भाई 'दर्द कै दस्तान', 'पछतावा' और 'रक्षासूत्र'। हमरे विचार ते इनका लघुकथा कहइनि का ना चही, ई तउ बहुतु सरिष्ट कहानी हैं- उसने कहा था, आकाश दीप, ममता, ताई, नमक का दरोगा, ते कौनिउ तना कम नाहीं हईं।' ई भले अवधी मां लिखी गई होई, मुला ई समूचे हिन्दी कहानी साहित्य की सिरोमनि है। हमरे बिचार ते कहानी उत्तम वहै होई, ज्याहिका पढ़ैया चले जाउ, मुल

पता न चले कि अंतु कहाँ होई ? अंत मां पढ़ैया स्वचतै रहि जाइ, चकित ह्वै के हक्क-बक्क, छटपटाइ उठै। सुरू से परिणामु कुछु औरू स्वाचति आवे-औरू ह्वै कुछु औरूइ जाई। यह कला इन तीनिउ कहानिन माँ सराबोरू है। उदाहरन के रूप मां 'रक्षा सूत्र' मां एक मालिक औरू नौकर केर संघर्षु हइ।

तनिक सरी बात माँ ताव माँ आइके मालिक रघुबीर गोली मारी दिहिसि अपने सेवक रंजन का। बादि माँ मुकदिमो माँ अपने धन की लागति ते छूटि गवा। पढ़ैया जब कहानी पढ़िसि, तउ मिला वहिला झगड़ा फसाद कतल। आखिरी कहाँ गवा रक्षासूत्र वाला सुत्रु। सेठि उदास रहै लाग, उदासी का कारनु कोई जानिनि ना पावै-आखिरि ऊ बताउनि दिहिसिमुल तबहूँ इच्छा सूत्र का कहूँ चिन्हु ना् मिला। रघुबीर अस बहदला याक दिन पहुँचिगा रक्षाबंधन के दिन रंजन के घर। पतिहंता का देखिके बिचारी अनाथ विधवा ड़यराइ गई, टटरा बंद करे लपकी कि धनवान सेठ वहिके पांवन पर लोटिगा। कहानी यहे ठौर अपने चरमोत्कर्ष पर पहुचि जाती हइ। रघुबीर याक हाथ माँ रसरी और याक माँ राखी । क्यतना विरोधा भास है-एक जानवर बाँधेवाली औरू दूसरी भाई बहिनि की प्रीति का प्रतीका सेठि के सबद बड़े प्रभावसाली और मार्मिक हैं-

ल्या ई रसरी, यहि से हमारि गटई कसि के रंजन के लगे पहुंचाइ द्या, अउ नाहीं ई राखी हमरे हाथे माँ बान्हि के हमका आपन भाई बना ल्या।''[6]

प्रमोद घनश्याम का कथन है कि -''दर्द कै दास्तान, जातियता कै जहर, पछतावा, नमक हलाल ओर चोर चोर मउसियाउत भाय आजु के समाज कै दरपन होय। 'जातीयता कै जरह म तौ कहानी कै पात्र जइसै' 'व्यथित' जी कै सनेस कहत होय, 'हमें दु:ख यहि बाति कै बा कि यतनी लम्मी साधना के बादिउ तोहरे दिल से जातीयता का जहर निकालै म हम अपुना का असफल पावा थई।' ठाकुर रामधनी सिंह सेवा त्याग के माध्यम से वै जातिपाँति वर्ग भेद रहित राजनीति करै पे जोर दे थे, 'दहेज के दानव' आजु के समाज के कोढ़ 'दहेज' औ ओसे उपजैवाली तमाम निजी, परिवारिक औ सामाजिक विसंगतियन कै लेखा-जोखा होय। लेखक व्यंग और दु:ख

के साथे पूछत है कि, 'यहि दुनिया का काउ भा बा? अरे! बुलेट, फ्रीज बिटिया कै बाप नाहीं दिहिस त कमाई कै खरीदि ल्या।' आपन सदिच्छा 'पगड़ी कै कबर' म पिरोय कै लेखक समाज कै आँखि औ दिमाग दूनौ खोलै कै कोसिस केहे बा।''[7]

क्रमश: प्रमोद घनश्याम का कथन है कि -'' दम्भ कै विषचक्र तौ समाज म फइलत झूठ-मूठ कै सान-सौकत औ देखावे कै नंगी तस्वीर है। आंजनेय जइसन नव नवजवान का यहि कहानी से शिक्षा मिलत है कि जेकरे खून-पसीना के कमाई औ संरक्षण मा उच्च-शिक्षा पद पावैं वहिं बाप-दादा कै अपमान न करैं। कमोबेस ई घर-घर कै कहानी होय कब्बो कभार तौ अनचाहे ही नवजवान कुराह पर चलि पर थै, यहि लिहाज से 'चोर के आ' बड़ी मार्मिक कहानी है। महँगाई, भ्रष्टाचार, गरीबी, बीमारी से ज्यादा बेकारी के चलत नेक इंसान पथभ्रष्ट होइ जा थै-'वइसै त हमहूँ हिन्दी से एम. ए केहे हई। साहित्य में हमारि विशेष अभिरूचिउ बा। घरे में एक बेटवा अऊ, पत्नि अहै। पढ़ि-लिखि कै बेकार हई। बहुत हाथ-पाँव मारे मुला नौकरी नाई मिली। उतौ गुलरी कै फूल भै बा। हारि कै पाकिट मारी कै घटिया धन्धा स्वीकार कइ लिहे हई। आखिर पेटे बरे कुछु करइन का हो थै।' कथाकार आगे कहत है कि 'जउ मनई का नैतिक तरीका से रोटी नाइ मिलत तउ मजबूर होइ कै ऊ अनैतिक बनि जा थै। यहि बरे समाज अउ सरकार कै नैतिक दायित्व होय कि अपने कुलि नागरिकन की रोजी-रोटी कइ व्यवस्था करइ। हमारि तौ आपनि मान्यता आ कि चोरी करै वाला चोर नाई होत बल्कि चोरी करै बदे मजबूर करै वाली सरकार अउर ओकै व्यवस्था चोर आ।''[8]

गुजरात की हिन्दी साहित्य सृजन परंपरा का अवलोकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि डॉ. जयसिह 'व्यथित'जी ने अपनी गद्य रचनाओं में गुजरात के परिवेश को तो स्पर्श किया है किन्तु इन रचनाओं में अवध प्रदेश की मिट्टी की गंध सर्वत्र व्याप्त है। इससे यह सिद्ध होता है कि डॉ. जयसिंह 'व्यतिथ'जी अधिकांशतः अपने गांवों के मूल संस्कृति से ही जुड़े रहे हैं, जो उनकी आत्मा में रची बसी है।

संदर्भ-सूची

1) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी- देस कै माटी, पुष्ठ-15-16.
2) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/202.
3) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/202.
4) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/202.
5) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/202-203
6) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/200.
7) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/197.
8) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/197.

संपादकीय के रूप में जयसिंह 'व्यथित'

जयसिंह 'व्यथित' हिन्दी के एक प्रतिष्ठित रचनाकार तो हैं ही किन्तु संपादन के क्षेत्र में उनका प्रमुख योगदान उल्लेखनीय है। जहाँ उनके संपादक स्वरूप प्रतिष्ठित रूप समक्ष आता है, वहाँ कहा जा सकता है, कि संपादक का दायित्व मात्र साहित्य की आचारसंहिता का निर्वाह करना ही नहीं रहता बल्कि उसका एक सामाजिक दायित्व होता है, जो उसे सीधा उसके पाठक समुदाय से जुड़ता है। जहाँ उसकी साहित्यिक समझ, धार्मिक, सांस्कृतिक एवम् सामाजिकता के विविध पक्षों में उसकी निष्ठा ज्ञापित करती है।

प्रमुखरूप से जयसिंह व्यथित गुजरात हिन्दी विद्यापीठ की प्रमुख पत्रिका 'रैन बसेरा' के संस्थापक संपादक हैं, जो सन्1988 से अनवरत रूप से तथा सक्रिय रूप से प्रकाशित होती है। यह मासिक पत्रिका विशेष रूप से तो हिन्दी भाषा के प्रचार एवम् प्रसार कार्य के दायित्व से ही जुड़ी हुई है, किन्तु समग्र रूप से यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक धरोहर प्रतिष्ठापित हुई है। यह पत्रिका ओढ़व से प्रकाशित होती रही है और गुजरात हिन्दी विद्यापीठ, अहमदाबाद की मुख्य पत्रिका के रूप में जानी जाती है, किन्तु इस पत्रिका के लेखक एवं रचनाकार समग्र देश में व्याप्त है। दक्षिण भारत में आंध्रप्रदेश, केरल, चेन्नई, तमिलनाडू से लेकर ठेठ उत्तरांचल तक इसकी ख्याति व्याप्त हुई है तथा इसमें अनेक प्रतिष्ठापित हिन्दी और अहिन्दी भाषी विद्वानों का रचनात्मक सहयोग संलग्न रहा है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' द्वारा संपादित 'रैन बसेरा' पत्रिका का संपूर्ण वृत्तको यदि रेखांकित किया जाय तो उसमें निम्नांकित विषयों का समावेश पाया जायेगा। (1) साहित्यिक अवधारणा, (2)सामाजिक अवस्थाओं के प्रति संवाद तथा टिप्पणी, (3) धर्म और संस्कृति के प्रति जिज्ञासापूर्ण समाधान, (4) राजनैतिक परिस्थितियों के प्रति साफ और सुधरा मंतव्य, (5) हिन्दी के विद्धानों, आचार्यों एवम् कवियों के प्रति परिचयात्मक तथा समीक्षात्मक लेख (6)राजनैतिक एवम् महापुरूषों के प्रति उदात

विचार तथा अनेक सिद्ध हस्त कवियों और लेखकों की रचनाओं का संतुलित संपादन आदि अनेक विशेषताएँ उनके संपादक रूप में देखी जा सकती है।

कारगिल युद्ध के संदर्भ में उन्होंने संपादकीय में स्पष्ट किया है कि- ''देश की सीमाओं की रक्षा-सुरक्षा के लिए सुरक्षा दल के जवान होते हैं। उनकी मदद के लिए गुप्तचर संस्थाएँ होती हैं, जो उन्हें पल-पल की शत्रु शिविर की गतिविधियों का व्यौरा पहुँचाती रहती हैं। इस तरह सीमाओं की सुरक्षा निश्चित होती है। सीमा सुरक्षा एवं राष्ट्र रक्षा के दायित्व विभाग और हमारे सुरक्षा कर्मी एवं राष्ट्र के रक्षामंत्री तथा शासन-प्रशासन की तमाम मशीनरी इस कदर सो गई कि दुश्मन सीना ताने सिंह नाद करते हुए हमारे घर में घुस आया और हम सब उनके भरोसे सोते ही रह गए। देश का सौभाग्य ही समझिए कि कुछ चरवाहें अपने पशुओं के साथ उस क्षेत्र में जब गए तब उन्हें पता चला कि ये तो दुश्मन देश के लोग हमारी सीमाओं में घुसकर अपनी स्थिति सुदृढ़ करके आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। उन लोगों ने यह समाचार जब वहाँ की प्रशासनिक इकाइयों के कानों में डाला तब हमारे शासन प्रशासन में खलबली मच गई। दिल्ली बौखला गया सेना के जवान मोर्चा सम्हालने के लिए आगे बढ़े। दुश्मन के छद्‌म वेशी सैनिक आतंकवादी बनकर कारगिल के सीने पर अपने बंकर और संगर बनाकर मजबूत स्थिति में जहाँ मोर्चा सम्हालकर बैठ गए थे। वहीं हमारे जाँबाज सैनिकों को नीचे से उपर पहुँचना था। यह बड़ा कठिन कार्य था। दुश्मन के लोग अपने आग्नेय अस्त्रों द्वारा आग बरसा रहे थे और हमारे सैनिकों को उस आग के बीच से निकलकर ऊपर जाकर उनसे लोहा लेना था। सोचिए, यह कितनी कठिन काम था। इसी से आप अनुमान लगा सकते हैं कि कितनी ललनाओं के सुहाग सिन्दूर उजड़ गए होंगे ? कितनी ही माताओं के लाल, कितनी बहनों के भाई इस खूनी खेल में राष्ट्र की बलिवेदी पर शहीद हो गए होंगे ? कितनी ही राष्ट्रीय संपत्ति एवं सैनिक साजोसामान की तवाही हुई होगी, जिसका अनुमान लगाना सहज नहीं है।''डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी 'रैन बसेरा', अक्टूबर-1999, पृ-02)

इस तरह उन्होंने कारगिल युद्ध के प्रति अपनी राजनैतिक सोच को स्पष्ट किया है।

देश की सुरक्षा व्यवस्था को लेकर व्यथित जी सदैव ही व्यथित रहें हैं और सैनिक कार्यवाही दिवंगत हुए सौनिकों के प्रति उनकी अन्तर्वेदनाएँ बार-बार प्रकट होती रही है। वे कहते हैं कि-''इन तमाम युद्धों में शहीद हुए जवानों और जिन्दा बचकर आये सैनिकों ने जननी जन्मभूमि की आन-बान-शान की रक्षा की। हम भारतवासी उनके प्रति अत्यंत आभारी एवं कृतज्ञ हैं। हमें उनके शौर्य एवं उनकी शहादत को कभी भी भूलना नहीं चाहिए और उनसे किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करना चाहिए किन्तु जाने-अनजाने हमारे शासन-प्रशासन ने किन्हीं कारणों से भावनाओं के प्रवाह में बहकर भारतमाता की बलिवेदी पर शहीद होनेवाले सैनिकों तथा विजयश्री प्राप्त कर जिंदा बचकर आने वालों में एक भेद रेखा का निर्माण कर दिया जो अत्यंत दु:खद एवं असह्य है। पहले के युद्धों में शहीद या विजय प्राप्त कर जिंदा लौटने वाले सौनिकों को सेना के नियमों और मानदण्डों के आधार पर ही सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया और सारा देश उनका कृतज्ञ रहा, जबकि 1999 के युद्ध में शहीद हुए सैनिकों और उनके परिवारजनों के सम्मान में देश के शासनतंत्र ने मनमाने ढंग से रक्षा तन्त्र के पुराने नीति-नियमों को ताख पर रख कर दस-दस लाख की अनुग्रह राशि और जाने अन्य कितनी ही सुख-सुविधाओं की घोषणा करके दे के आर्थिक ढाँचे को हिला दिया। शहीदों की अर्थियाँ उनके मादरे-वतन तक ससम्मान सरकारी खर्चे से लाई गई, प्रशासन को सख्त आदेश दिया गया कि वह उनकी अर्थी को ससम्मान कन्धा दें। वही (रैन बसेरा, नवन्बर -1999, पृ-02)

भारतवर्ष की चरमराती लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रति वे मर्माहत रहे हैं और उन्होंने इसे स्पष्ट रूप से कापुरूषों (वेन्टल, नपुंसक) के आधिक्य की विभत्स से जोड़कर देखा परखा है। वह इसे पारिभाषित करते हुए कहते हैं कि-''इस सृष्टि के सभी जीवधारियों में मानव सर्वश्रेष्ठ जीवधारी माना जाता है। मानव के पास विशाल

हृदय, विकसित मस्तिक और चेतना शक्ति का विपुल भण्डार होता है। इसी से वह अन्य प्राणियों में सर्वोपरि माना जाता है। मनुष्यों के दो वर्गों से तो हम भली भाँति परिचित हैं। उनमें से एक है स्त्री और दूसरा है पुरूष। उसी में एक तीसरा वर्ग भी है नपुन्सक इन्हें वेन्टल भी कहते हैं। इनका एक अलग ही समाज होता है। हिन्दी में स्त्रीलिंग, पुलिंग मात्र दो लिंग ही हैं। लगता है इसीलिये नपुन्सक वर्गीय व्यक्तियों के दु:ख दर्द तथा उनके मनोभावों से हम अपरिचित रहते हैं। यही कारण है कि हिजड़ा (वेन्टल) हमारी उपेक्षा का कारण बना हुआ है।''(वही रैन बसेरा, डिसम्बर-1999, पृ-02)

जयसिंह 'व्यथित' राष्ट्र पर खड़े आसान्न संकट से भी चिन्तीत हैं। वे अपने इस व्यथितवाद संपादकीय में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि-''सृष्टि के मूल में व्यथा है। व्यथा की कथा और उस के शमन की अवधारणा हेतु भावात्मक एवं वैचारिक धरातल पर साहित्य के माध्यम से सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की रागात्मक अभिव्यक्ति की दशा को सार्वभौमिक दिशा प्रदान करने की साहित्य की विभिन्न विधाओं द्वारा नैष्ठिक साधना का सार तत्व ही व्यथितवाद का मूलाधार है।

यह सृष्टि रावणत्व से त्रस्त रामत्व की तलाश में अहर्निशि संघर्षरत है। यानी भौतिकवाद तथा आध्यात्मिकता की लड़ाई अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु चरम पर पहले भी थी आज है और आगे भी रहेगी। ऐसी दशा में व्यथितवाद समन्वय का पक्षधर है। वह अति सर्वत्र वर्जयेत को मान्य रख मध्यम मार्ग का पथ प्रशस्त कर साहित्य में रामत्व की समन्वित भूमिका के निर्वहन में **'सर्वे भवन्तु सुखिना: सर्वे सन्तु निरामया:'** के आदर्श को चरिथार्त करने का संकल्पित प्रयास है।

साहित्य में व्यथितवाद अर्थात् अभी तक के समस्त साहित्यिक-वादों की संकीर्णताओं से उपर उठकर प्राणिमात्र की पीड़ा की अनुभूति को सृजन की सार्वभौमिकता में शिवत्व के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने का शुभ संकल्प है। इसमें न तो किसी का विरोध है और न किसी तरह के विवाद का अवकाश। साहित्य का

मुख्य उद्देश्य मन की मुक्तावस्था में परमानन्द की प्राप्ति हे और व्यथितवाद उसकी संवाहक एवं सम्वर्धक भूमिका का नाम है।

रैन बसेरा का यह जनवरी 2000 का अंक व्यथितवाद का विशेषांक है। जिसका मनन-मंथन एवं चिन्तन कर आप सुधीजन व्यथितवाद की आवश्यकता और उसकी सार्थकता से भली-भाँति परिचित हो। उसके संवाहक बनें। वर्ष 2000 के इस नववर्ष की मंगल बेला पर रैन बसेरा परिवार अपने सभी पाठकों, रचनाकारों, प्रशंसकों, शुभचिन्तकों की झोली में नववर्ष की ढ़ेर सारी खुशियाँ व मंगल कामनाएँ डालकर वन्दन-अभिनन्दन करता है।(वही, रैन बसेरा, जनवरी-2000, पृ-02)

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'ने रैन बसेरा पत्रिका के माध्यम से साहित्य में व्यथितवाद का एक नया नारा खड़ा किया और यह सिद्ध करने का प्रयास क़िया है कि व्यथा ही साहित्य की असली पहचान है। व्यथा को उन्होंने शोषण, संतराश, दमन, उपेक्षा, अन्याय, अनीति, अपमान,अभाव और दरिद्रता के परिप्रेक्ष्य में पारिभाषित किया है। जब व्यक्ति अपने सम्पूर्ण सामर्थ के साथ कर्म करने पर भी अपना तथा अपने परिवार का पोषण नहीं कर पाता तब वह समाज के प्रति अलगाववादी वृत्ति से अलग हो जाता है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' ने विशेषकर धार्मिक साहित्य के माध्यम से इन व्यथा को तथा व्यथितवाद को व्यक्त किया है। जिसे अनेक स्थापित साहित्यकारों ने लेखकीय सहमति से बल प्रदान किया है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' का यह व्यथितवाद वाल्मीकि रामायण के 'क्रौंचवध' से लेकर पंत की कविता **''वियोगी होगा पहला कवि''** तक अपनी उदारवादी चेतना को प्रसरित करती है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित' ने अपने जनवरी 2000 के रैन बसेरा-संपादकीय में व्यथितवाद क्या और क्यों? उनके इस मंतव्य को अनेक विद्वानों ने बल प्रदान किया है। जिनमें डॉ. आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदिप' (अवधी लोकसाहित्य में व्यथितवाद), डॉ. ओंमकार नाथ द्विवेदी (व्यथितवाद), डॉ. कोमलशास्त्री (व्यथितवाद

की अवधारणा), मथुरा प्रसाद सिंह 'जटायु' (हिन्दी साहित्य में व्यथितवाद की प्रासंगिकता), डॉ. सुशीलकुमार पाण्डेय (व्यथितवाद) आदि अनेक साहित्य मनिषियों ने जयसिंह व्यथित द्वारा व्यक्त व्यथितवाद को सैद्धांतिक समझ के साथ व्याख्यायित किया है। (वही, रैन बसेरा, जनवरी-2000)

जयसिंह व्यथित ने अपने संपादकीय दायित्व का निर्वाह करते हुए देश के सरकारी व्यवस्था की तौर तरीका के भी कटु-आलोचना की है। उन्हेने प्रचार माध्यमों की कमजोरियों और उनके भ्रष्टाचारों पर भी खुलकर बात कही है। व्यथित जी ने दूरदर्शन की असंतुलित व्यवस्था पर तथा हिन्दी की उपेक्षामय नीतियों पर खुलकर प्रहार किया है। उन्होंने ग्रामीण आँचल की सरस्वती पुत्रों की समस्या और समाधान जैसे लेख लिखकर एक सर्वथा उपेक्षित विषयों को आगे बढ़ाया है और इस प्रकार के रचनात्मक सुझाव उनके द्वारा लिखी संपादकीय में अधिकांश देखी जाती है।

व्यथित जी ने हिन्दू धर्म की सांस्कृतिक एवम् सामाजिक आस्थाओं को भी से प्रासांगित संदर्भो से जोड़ते हुए उनकी महत्वाकांक्षा वे होली के विशे में कहते हैं कि- ''होलिकोत्सव को पर्व एवं आनन्द-उल्लास के साथ मनाने का तात्पर्य घोर भौतिकतावादी आसुरीशक्तियों पर आध्यात्मिकता एवं भौतिकता की समन्वित मानवतावादी शक्तियों की वैचारिक क्रान्ति की विजय और इस विजय का श्रेय होलिका के सर्वोच्च बलिदान को जाता है। यदि होलिका ने प्रह्लाद के प्राणों की रक्षा न की होती तो प्रह्लाद बचता नहीं यदि प्रह्लाद बचता नहीं तो रामत्व व शिवत्व का कल्प वृक्ष उगते ही मुरझाकर सूख जाता। इसीलिए प्रहलादोत्सव न मनाकर हम प्रतिवर्ष होलिकोत्सव का आनन्द लूटते हैं।

उपरोक्त विचार आप सभी सुज्ञ पाठकों एवं चिन्तकों के मनोमंथन के लिए है, न कि आपके मानसिक उत्पीड़न के लिए। आप होलिका को असुर सहोदरी मानकर पूर्वग्रहित हो उसकी मानसिकता पर ऊँगली उठा सकते हैं किन्तु मेरा चैतन्य ऐसा करने से मुझे रोकता है। मैं मानता हूँ कि वह महान थी और उसकी वह महनीयता

ही आज भी होलिकोत्सव के रूप में जिन्दा है।''(वही, रैन बसेरा, अप्रैल-2000, पृ-02)

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अन्यान्य पड़ोसी नागरिको की घुसपेठ, धर्मांतरण की समस्या तथा आतंकवाद जैसे ज्वलंत विषयों पर अपने उद्‌गार व्यक्त करते हैं कि हिन्दू धर्म और संस्कृति में अनन्त आस्था रखते हुए धर्मान्तरण को एक राष्ट्रीय संकट के रूप में स्वीकार करते हुए वे कहते हैं कि-''विश्व के सभी धर्मो और संस्कृतियों में हिन्दू धर्म व संस्कृति का अपना विशेष स्थान है। इतिहास इसकी प्राचीनता व पौढ़ता का साक्षी है।'' एक जमाना था, जब सारे विश्व पर इसका प्रभाव था। संसार की सारी संस्कृतियाँ और सभ्यताएँ एक-एककर काल-कवलित होती गई किन्तु भारतीय सभ्यता का ध्वज सदैव फहरता रहा। इसी लिए तो इकबाल कवि ने कहा है कि-

''यूनान मिश्र रोमा सब मिट गये जहाँ से,
कुछ है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।''

हिन्दू धर्म व संस्कृति के मुकाबले में ईसाई और इस्लाम धर्म बिल्कुल नये हैं। ए तो यहूदी धर्म से उद्‌भव हुए कल के धर्म हैं किन्तु इनकी एक बहुत बड़ी खासियत यह है कि काफी असहिष्णु एवं आक्रमक हैं। आज दुनिया के अधिकांश देश या तो ईसाई धर्मावलम्बी हैं या इस्लाम। इन दोनों धर्मावलंबियों ने या तो धन की लालच देकर या फिर तलवार के भय से अन्य धर्मावलंबियों को आत्म्‌सात्‌ करने की जो कुचेष्टा की उसके परिणाम स्वरूप यहूदी धर्म नामशेष होते-होते इजरायेल के छोटे से भू-भाग पर जाकर सिमट कर रह गया और अपने अस्तित्व की लड़ाई में आज भी खून-पसीना बहा रहा है। पारसी धर्म तो अपना वतन ही खो बैठा और भारत में निराश्रित जीवन बिता रहा है।

अब बचा हिन्दू धर्म व उसकी महान संस्कृति। जिसका व्याप प्राचीन काल में

पश्चिम में गंधार-कंधार अफगानिस्तान से लेकर पूर्व-दक्षिण में बांग्लादेश, इन्डोनिशया, मलेशिया, अनाम, कंबोडिया, जावा, सुमात्रा, ब्रह्मदेश आदि तक था, जो आज सिमटते-सिमटते मात्र भारत की वर्तमान महान धर्म और संस्कृति सिमट कर सिकुड़ गई और आज भी दिन प्रतिदिन सिकुड़ती चली जा रही है।

इस महान सभ्यता संस्कृति के चाहकों एवं पोषकों के लिए यह एक गंभीर प्रश्न है, उनके अस्तित्व का सवाल है। यह प्रश्न मात्र धर्म का नहीं बल्कि इस देश के बहुजन समाज के अस्तित्व का है। आप राजनीति करते हैं तो करें, जिस किसी भी पक्ष को मानते हैं तो माने। इसमें किसी को कोई इतराज नहीं किन्तु यदि आपका अस्तित्व खतरें में हैं तो उसकी अस्तित्व खतरे में है तो उसको लिए उसके लिए आपको अवश्य ही एक जुट होना है। यहाँ पर इस संदर्भ में मैं कुछ आंकड़े देना चाहूँगा जिन्हें देख-समझकर आप स्वयं इस पर विचार करने के लिए मजबूर हो जायेंगे।

पूर्वांचल में 1890 में ईसाइयों की कुल वस्ती 17,000 थी जो 1971 में बढ़कर कुल आबादी का 66.76% हो गई। यही नहीं मेघालय में 1840 में एक भी ईसाई न था किन्तु 1991 में उनकी जनसंख्या 70% से भी अधिक हो गई। पूर्वांचल के सात राज्यों में 1890 में ईसाइयों की कुल आबादी मात्र 17000 थी जो बढ़कर 1971 में 17,82,172 हो गई। यह कुदरती आबादी नहीं बल्कि धर्मान्तर के कारण बढ़ी आबादी है। बंगाल जो अब बांग्लादेश कहलाता है वहाँ पर 1941 में मुस्लियों की अपेक्षा 28% हिन्दू आबादी थी जो घटते-घटते 1991 में मात्र 10% रह गई। आसाम में 1901 से 1951 के अर्से में ईसाइयों की आबादी 39.6% बढ़ी और 1951 से 1971 में 89% की वृद्धि हुई।

आसाम में 1871 में मुसलमानों की आबादी 2,50,470 थी जो 1971 में बढ़कर 36,00,000 हो गई। दक्षिण भारत, पश्चिम भारत और उत्तर भारत में भी यही स्थिति है। काश्मीर से जो हिन्दी पंडित नामशेष जैसे ही हो गये। ईसाई और इस्लाम

धर्म में परिवर्तन के लिए विश्व के ईसाई व मुस्लिम देशों की तिजोरियाँ खुली हुई हैं। लालच, भय और षणयन्त्र के तहत भारतीय सभ्यता-संस्कृति और हिन्दू धर्म अपने अस्तित्व के भीषण खतरे से थर-थर काँप रहा है। धर्मान्तर पर प्रतिबन्ध हिन्दू धर्म-जाति के अस्तित्व के लिए अत्यन्त आवश्यक है नहीं तो हम अपने घर में ही विदेशी होकर रह जायेंगे और दुनिया में हमें बैठने के लिए कहीं स्थान नहीं मिलेगा।''(वही, रैन बसेरा, मई--2000,पृष्ठ-02)

संपादकीय लेखन में डॉ. जयसिंह व्यथित का नज़रिया बहुआयामी रहा है। उन्होंने अपने संपादकीय लेखों में जहाँ एक ओर साहित्य की विविध विधाओं के प्रति अपना नज़रिया व्यक्त करते हुए उनकी आलोचना, समिक्षाएँ, विवेचन, एवम् विश्लेषण प्रस्तुत किया है। वहीं दूसरी ओर सामाजिक और राजनैतिक परिपेक्ष में उनका मंतव्य अत्यंत सालिन और सौम्यता के साथ व्यक्त हुआ है। अपमे इस सौम्य वक्तत्व के साथ उसका गाँधीवादी दृष्टिकोण भी स्पष्ट होता है। जिसके तहत उन्होंने अपने उद्ववेलित एवम् आंदोलित विचारों को अत्यंत संयम के साथ सालिनता से व्यक्त किया है।

चुनाव और भारत का संविधान शिर्षक संपादकीय लेख में वह कहते हैं कि - ''भारत एक संप्रभुता संपन्न विशाल लोकतांत्रिक राष्ट्र है। समान अधिकार के आधार पर राष्ट्रिय संसद व प्रान्तीय विधान सभाओं का गुप्त मतदान चुनाव द्वारा किया जाता है। जिसमें विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रत्याशी अथवा स्वतंत्र प्रत्याशी के रूप में भारत के किसी भी नागरिक को चुनाव लड़ने का अधिकार होता है। चुनाव जीतने के बाद बहुमत के आधार पर समर्पित व्यक्ति को नेता चुना जाता है, और वही अपना सरकार का गठन करता है। इस प्रकार राष्ट्र व प्रदेश का शासन चलता है। चुने हुए जनता के प्रतिनिधि मात्र पाँच वर्षो के लिए होते हैं और प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद फिर से चुनाव होता है। जिस समय संविधान बना उस समय की परिस्थितियाँ कुछ और थीं किन्तु समय के साथ-साथ आज देश की परिस्थिति में काफी बदलाव आ गया

है। अतएव चुनाव के संदर्भ में भारतीय संविधान में कुछ परिवर्तन करना बहुत जरूरी हो गया है। जिस पर चुनाव आयोग और देश की जनता को अत्यन्त गंभीरता पूर्वक विचार कर लेने एवं ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

पहली बात तो यह है कि मताधिकार भले ही सबको समान है किन्तु प्रतिनिधित्व के लिए उस क्षेत्र विशेष में उस व्यक्ति की कम से कम दस वर्ष की सक्रिय सेवा की भूमिका होनी चाहिए। तभी वह उस क्षेत्र विशेष से विधानसभा एवं संसद के प्रतिनिधित्व के योग्य माना जाय। इतना ही नहीं एक व्यक्ति को एक ही क्षेत्र से चुनाव लड़ने का अधिकार होना चाहिए। यदि विधान सभा या ससंद की सीट पर कोई प्रत्यासी विजयी हुआ है तो पाँच वर्ष तक उस सीट का उसे प्रतिनिधित्व करना अनिवार्य होना चाहिए। सिवाय इसके कि उसकी मृत्यु या उसका नैतिक अध:पतन हुआ हो।

सांसद या विधान सभाएँ पूरे पाँच वर्ष चलनी चाहिए। बीच में उन्हें भंग कर नये सिरे से चुनाव नहीं कराना चाहिए। चुने जाने के पश्चात् कोई भी विधायक या संसद को पाँच वर्षो तक पक्ष-पल्टा न कर सके। यदि सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाया गया तो दो तिहाई बहुमत से ही सरकार गिराई जा सके अन्यथा नहीं। गठबन्धन या समर्थन की बात पक्षों को चुनाव के पूर्व तय कर लेनी चाहिए बाद में कदापि नहीं। यदि किन्हीं कारणों से सरकार चल सके ऐसी परिस्थिति न हो तो राष्ट्रपति राष्ट्रीय या प्रांतीय सरकार का गठन सर्वदलीय आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर कराये जो सर्व संमत राष्ट्रीय मुद्दों एवं विकास कार्यक्रमों के तहत ही कार्य करे। किन्तु राष्ट्रपति शासन न लादा जाय क्योंकि उससे नौकरशाही को बल मिलता है।

व्यक्तिगत स्वतंत्र प्रत्यासियों पर रोक लगे एवं पक्षीय ढ़ाँचे का मजबूत कर विचार धारा के आधार पर अधिक से अधिक तीन या पाँच पार्टियों को राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दी जाय। प्रान्तीय या क्षेत्रीय पार्टियों पर रोक लगाई जाय क्योंकि उनसे

क्षेत्रीयता को बढ़ावा मिलता है जो राष्ट्र के लिए विघातक सिद्ध हो सकता है।

भीड़ बटोरने एवं शक्ति प्रदर्शन की राजनीति पर पाबन्दी लगनी चाहिए। प्रत्याशी के पर्चा दाखिला के समय के जुलूश पर भी शख्त पाबन्दी लगनी चाहिए। प्रत्याशी तय करते समय क्षेत्रीय कार्य कर्ताओं की भूमिका ही अहम् होनी चाहिए। प्रत्यसी उपर से न लादा जाय इस प्रकार का संशोधन होना चाहिए। प्रत्याशियों के चुनाव का खर्च सरकार को वहन करना चाहिए। पार्टियों को मिलने वाले चुनाव फंड या चन्दे की रकम एकाउन्ट पेई चेक द्वारा ही स्वीकारर्य हो और उसका व्यवस्थित हिसाब होना चाहिए। ऐसे ही अन्य और भी बहुत सारे मुद्दे हैं जिन पर राष्ट्रीय सहमति के आधार पर विचार कर कानून बनाया जाना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त सारे प्रश्नों पर जब गंभीरता पूर्वक विचार कर उनके समाधान हेतु संविधान में संशोधन कर कानून बनाया जाएगा तब कहीं प्रजातंत्र के कैन्सर का समुचित इलाज हो सकेगा। हमारी शक्ति, हमारे साधनों एवं हमारे समय का राष्ट्रीय हित में सदुपयोग हो सकेगा। भ्रष्टाचार व अपसंस्कृति के दुस्प्रचार से बचा जा सकेगा। राष्ट्रीय बचत को बल मिलेगा। विकास की गंगा प्रवाहीत होगी तथा स्थायित्व को संबल मिल सकेगा। इतना हीं नहीं बल्कि माफिया एवं गुंडा तथा असामाजिक तत्वों पर अंकुश भी लग सकेगा।''(वही, रैन बसेरा, जून-2000, पृ-02)

इस संपूर्ण वक्तव्य में संसद और विधान सभाओं में प्रचलीत प्रजा तांत्रिक अधिनियमों और परंपराओं का उन्होंने बड़ा बेवाक विश्लेषण किया है। हाँलाकि व्यथित जी का पूर्वाग्रह भारतीय संस्कृति एवम् धर्म की उद्दात अवधारणा के प्रति समर्पित रहा है। किन्तु कहीं भी उन्होंने खूलकर किसी पार्टी विशेष का बेनर बननने से साफ इन्कार कर दिया है।

जहाँ तक उनकी आध्यात्मिक चेनता के विविध आयामी विस्तारों का प्रश्न है उनका मंतव्य **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का उद्दात् सद्भावनाओं पर आधारित है। वे कहते

हैं कि -''अति प्राचीन काल से हम देखते चले आ रहे हैं कि सामाजिक चेतना जगाने वाले हमारे आध्यात्मिक पुरूषों, संतों-महन्थों, ऋषि-मुनियों तथा समाज को सही दिशा में गति देने वाले महापुरूषो के विचारों के उपदेशकों-प्रचारकों का जीवन अत्यन्त पारदर्शी होता था। उनका अन्तर बाह्य एक जैसा होता था। वे जो कुछ भी कहते, वैसा ही उनका आचरण भी होता था। उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं होता था। जिससे समाज जीवन में उनकी वाणी एवं आचरण का अमित प्रभाव पड़ता था।

देवाधिदेव शंकर **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** के प्रतीक थे। उनके जीवन में साँप-बिच्छू, गाय-बैल, मानव-दानव, भूत-बैताल, जड़-चेतन, लगंडा-लूला, दीन-हीन सभी का समान स्थान था। वे समस्त प्राणी मात्र को अपना परिवार मानते थे। जरूरत पड़ने पर जनहित में वे विषपान करने में भी कभी पीछे नहीं रहते थे। उनका आन्तरीक एवं बाह्य जीवन एक था। वे सामान्य जीवन जीते थे तथा प्राणी मात्र के प्रति उनके जीवन में समानता का भाव था। राम और कृष्ण भी ऐसे ही महामानव थे जिनका अन्तर-बाह्य एक था। वे बनवासियों, पक्षियों-पशुओं में एकता का दर्शन करते थे। कृष्ण, ग्वाल-बालों, पशु-प्राणियों एवं पाषाण खंडों में भी जीवन की सौम्यता व समानता का दर्शन करते थे। ऐसे अनेकानेक महापुरूष हुए हैं, जिनका आज भी इस धरती पर अमिट प्रभाव है।

तुलसी, सूरदास, कबीर, मीरा, जायसी जैसे संत-फकीर भी हुए जो अपने धन-वैभव के बल पर नहीं बल्कि अपनी वैचारिक चेतना के बल पर समाज-जीवन को उर्जा प्रदान करते रहे। सूरदास की एक उक्ति तो जग जाहिर है कि -**''मोसो कहाँ-सीकरी सों काम, आवत-जात पनहिया टूटे बिसरि जाय हरि नाम।''** सम्राट अकबर के बुलाने पर वे फतेहपुर-सीकरी नहीं गयें, क्योंकि उन्हें भौतिक सम्पति की भूख नहीं थी। उन्हें आध्यात्मिक चेतना को जगाने की ललक थी।

इन सभी संत-मनीषियों का जीवन अत्यन्त सरल-सात्विक एवं साधना संपन्न

था। इसीलिए उनकी वाणी में तेज होता था जो आत्मिक चिन्तन से परिपूर्ण होता था। इनके उपदेशकों व प्रचारकों का भी अन्तर-बाह्य एक होता था, जिससे उनकी वाणी का वजन पड़ता था। किन्तु समय और परिस्थितियाँ आज बिलकुल बदल चुकी हैं जिससे आज प्रचारकों एवं उपदेशकों की वाणी का चमत्कार खत्म हो चुका है।

महापुरूषों एवं संत-फकिरों की बात कर समाज को उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण कराने वाले उपदेशकों की संख्या पहले की अपेक्षा आज सैकड़ों हजारो गुनी अधिक है, फिर भी उनके उपदेशों का स्वस्थ समाज के निर्माण में कोई विशेष प्रभाव नही दिखाई दे रहा है, क्योंकि उपदेशकों के वाणी वर्तन में किसी भी प्रकार का साम्य नहीं दिखाई दे रहा है। वे स्वयं तो एश व आराम की जिन्दगी जीने वाले सुविधा भोगी हैं, और अनुयायियों को उसकी विपरीत दिशा में चलने का उपदेश देते हैं। उनकी कथनी-करनी में साम्य न होने से समाज उनके उपदेशों में से कुछ भी आत्मसात नहीं कर अपनी स्वभाव जन्म विकृत्तियों का दिन प्रति दिन शिकार होता जा रहा है।

अतएव आज जरूरत है आचरण का उपदेश का नहीं। हमारे उपदेशक या कथाकार कहते तो राम-कृष्ण-शंकर, रामायण, गीता, भागवत की बातें लेकिन उनका आचरण तो रावणी-संस्कृति का पोषाक होता है। अत: आज के परिप्रेक्ष में हमारे संत-फकिरों एवं उपदेशकों का अपने शिखर पुरुषों के आचरण के प्रति पालन में तल्लीन हो समाज जीवन को दिशाबोध करना चाहिए, तभी स्वस्थ समाज व सुसंस्कृत राष्ट्र का निर्माण संभव होगा।''(वही, रैन बसेरा, जुलाई-2000, पृ-02)

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' एक प्रबुद्ध राष्ट्रवादी चिन्तक हैं। इसलिए उनका धार्मिक एवम् आध्यात्मिक चिन्तन भी राष्ट्र को समर्पित भावनाओं की एवम् उसके उत्थान से जुड़ा हुआ है। सीमा पर तैनात तथा राष्ट्र के लिए अपने प्राण न्यौछावर करनेवाले सेना के सिपाहियों के प्रति उनके हृदय में बड़ा ही सम्मान है। अपने संपादकीय में वह लिखते हैं कि- ''भारत सरकार की सेवाओं में रक्षा कर्मियों की सेवायें बड़ी ही महत्वपूर्ण होती हैं क्योंकि उन्हीं के संबल कन्धों पर राष्ट्र की सुरक्षा का सम्पूर्ण

दायित्व होता है। इन सेवाओं के महत्व और इनके जोखिम भरे कार्यों के कारण ही सरकार उन्हें काफी सहूलतें देकर उनके मनोबल को ऊँचा रखती है। उनके विशिष्ट साहस व शौर्य के लिए उन्हें बड़े-बड़े सम्मान व पुरस्कार भी देती है। उसमें किसी प्रकार का कोई भी भेदभाव नहीं होता। युद्ध के वीर सौनिक व शहीद समान सम्मान के अधिकारी होते हैं। यह उच्च प्रणालिका स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से अब तक निर्वाध गति से चलती चली आई है। किन्तु जून 1999 के कारगिल युद्ध के विजय अभियान में हुए भीषण युद्ध के बाद प्रस्थापित सम्मानोपाधि की उच्च प्रणालिका ध्वस्त कर दी गई, जो अपने आप में एक गंभीर प्रश्न बनकर रह गयी है।

बात ऐसी है कि आज़ादी प्राप्ति के बाद 1948 में कश्मीर को लेकर पाकिस्तान के साथ भीषण युद्ध हुआ। 1962 में चीन के साथ फिर 1965 व 1970 में पाकिस्तान के साथ घमासान युद्ध हुआ जिनमें हमारे ही कितने रण बाँकुरों ने भारतमाता के हित में हँसते-हँसते अपने प्राणों की आहुति कितने दे दी, कितने ही घायल और अपंग हुए। इतना ही नहीं ही परिवार उजड़ गये। किन्तु उन सब के साथ वही वर्ताव किया गया या सम्मानोपाधियाँ दी गई जो उनकी सेवा शर्तो के अनुरूप था उससे विशेष कुछ भी नहीं। जबकि जून 1999 के कारगिल युद्ध अभियान में शहीदों और घायलों के प्रति विशेष सहानुभूति व संवेदनाएँ दर्शायी गई तथा सम्मानोपाधिओं का अंबार लगा दिया गया और नकद धनराशि की तो बात ही क्या ? प्रत्येक शहीद के परिवार को दस-दस लाख रूपयों की नकद धनराशि एवं अन्य बहुत सारी सुविधाओं की घोषणाएँ की गई। जिलों व तहसीलों के जिलाधिकारी एवं उपजिलाधिकारी तथा अन्य सभी उच्चप दाधिकारियों जन प्रतिनिधियों को ताकीद की गई कि वे शहीदों की अर्थियों को कंधा दे और उनका यथोचित सम्मान करें।

ऐसा क्यों किया गया ? क्या इस बार के युद्ध में कोई विशेष बात थी ? जो इस युद्ध अभियान के शहीदों को विशेष सम्मान देने की जरूरत पडी? या इनकी सेवा शर्तों में कोई विशेष प्रावधान किया गया था ? इन तमाम प्रश्नों का जवाब देश की

जनता और इसके पहले के युद्धों में शहीद हुए या घायल, अपंग, सेवा निवृत सैनिक और उनके परिवार जन जानना चाहते हैं।

ए सारे के सारे प्रश्न ईर्ष्या या द्वेष भावना से नहीं बल्कि तर्क संगत न्याय हेतु उठाये गये हैं। क्या उसके पहले के युद्धों में मातृभूमि की रक्षा में शहीद हुए सौनिकों का खून खून नहीं पानी था, जो इस प्रकार का भेदभाव उनके साथ किया गया ? यह सीर्फ मेरी ही नहीं आम जनता की आवाज है। जनता इसका उत्तर चाहती है।

देश पर मर मिटने वाले सूरविरों को सम्मान देना कोई बुरा नहीं किन्तु भेदभाव करना यह बहुत ही बुरा है। आज हमारे देश में शिक्षित बेरोजगारों की एक लम्बी कतार है। जिसके परिणाम स्वरूप सेना जैसी जोखमी नौकरी की भर्ती के लिए भी रिश्वत का बाजार गर्म है। लोग कहते हैं कि पच्चीस से पचास हजार का भाव चलता है। सेना के भर्ती कार्यालयों में जहाँ सौ-पचास सैनिकों की भर्ती होनी होती है, वहीं हजारों की संख्या में उम्मीदवार लाइन में होते हैं। अभी बिहार राज्य के दो एक जगहों पर सैनिक भर्ती कार्यालयों पर पचासों हजार प्रत्याशी लाइन में आ गये। भयंकर अव्यवस्था हुई। गोली चली सैकड़ों नौजवान मारे गये। कितने यह कहते सुने गये कि इधर शहीदों के आश्रितों को सरकार दस-दस लाख दे रही है और इधर हमें कोई पूछता नहीं। हमें तो सरकार मात्र एक लाख दे हम जननी जन्मभूमि की सेवा हँसते-हँसते अपने प्राणों की आहुति देंगे। उसके बदले में हमारे परिवारजन कुछ भी नहीं मांगेगे। यदि वास्तव में देश में बेकारी की ऐसी स्फोटक परिस्थिति है तो इन जवानों को क्यों नहीं मौका दिया जाता ? क्यों शहीदों के नाम पर दस दस लाख देकर लोगों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है ?

जो शहीद हुए वे भलीभाँति जानते ही थे कि सैनिक का जीवन जिन्दगी और मौत के बीच का जोखिम भरा जीवन है। देश रक्षा में मरना उनकी सेवा शर्तों का भाग है। फिर यह अतिशत उदारवादी भेदभावपूर्ण रवैया क्यों अपनाया गया जिससे इसके पूर्ववर्ती युद्धों के सैनिकों शहीदों और उनके परिवार जनों को अपमानित होना पड़ा

? खैर जो भी हुआ। मेरी समझ से तो वह योग्य नहीं कहा जा सकता। आप सब भी इस पर गौर करें। इससे अधिक और क्या कहूँ ?(वही, रैन बसेरा, अगस्त-2000,पृ-02)

बात भाषा की हो, साहित्य की हो, समाज की हो, या राजनीति की हो डॉ. जयसिंह व्यथित कहीं भी अपने मानद् निर्धारणों से समझौता नहीं करते । उनके चिन्तन पर भारतीयता का राष्ट्रवादी उद्धात परिकल्पना सदैव आच्छादित रही है। जितना वे भारतीयता के प्रति समर्पित हैं, उतने ही वे उत्तरांचल की तथा गुजरात की सांस्कृतिक उद्धभावनाओं के प्रति श्रद्धावान रहे हैं। गुजरात की गरबा-रास संस्कृति के प्रति अनंत आस्था व्यक्त करते वह कहते हैं कि -''भारत के विभिन्न प्रदेशों की तरह पश्चिमी छोर पर स्थित गुजरात प्रदेश अपनी लोक संस्कृति के लिए देश में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस प्रदेश की लोक-संस्कृति गरबा और रास के इर्द-गिर्द मंडराती दृष्टिगोचर होती है। गरबा और रास सामूहिक साधना और लोक भावनाओं की सामूहिक अभिव्यक्ति का अद्वितीय माध्यम है। गुजरात की लोक संस्कृति एवं उसके लोक साहित्य से यदि गरबा रास को निकाल दिया जाय तो गुजरात का लोक-साहित्य सूना हो जाएगा।

इस प्रदेश में धर्म भीरूता यत्र-तत्र सर्वत्र दृष्टि गोचर होती है। जो गरबा रास के माध्यम से जन मानस से सदैव निस्सृत होती देखी जाती है। माँ अम्बे की उपासना गुजरात की विशिष्ट उपासना है, जो गरबा रास के माध्यम से जन जन को आप्लावित करती है। नवरात्रि की नव दुर्गा पर्व हो या कृष्ण जन्माष्टमी का त्यौहार हो बिना गरबा रास के उसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। अम्बे माताजी की आराधना का प्रारंभ गरबा से होता है। कृष्ण जन्माष्टमी के पर्व का प्रारम्भ रास से होता है। इन पर्वों के अवसर पर यहाँ का जनमानस जाति धर्म सम्प्रदाय की सीमाओं को बाँधकर एकाकार हो जाता है और सामूहिकता की मिशाल पेश कर सारे गुर्जर प्रदेश को एक सूत्र में बाँध देता है।

विद्यालयों और महाविद्यालयों में गरबा रास के माध्यम से गुजरात की लोक-संस्कृति को अक्षुण्ण रखने का पूर्ण प्रयास किया जाता है। जिसके लिए यहाँ का शासन-प्रशासन उसे हर प्रकार से प्रोत्साहन देता है। सामाजिक सांस्कृतिक संस्थाओं के कार्यक्रमों में गरबा-रास द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका अदा की जाती है। समाज में इसका ही आधार लेकर अनेक शुभकार्य सम्पादित होते हैं। गरबा प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया जाता है। देवी-देवताओं से किसी कार्य को सुचार समापन के लिए गरबा की मनौती होती है। मनौती पूर्ण करने के लिए लोग भोज के साथ गरबा का प्रोग्राम रखते हैं। ऐसे शुभ अवसर पर स्त्री-पुरूष, बाल-वृद्ध सभी भक्ति भावनाओं से सराबोर होकर गायन-वादन करके इस लोक नृत्य में तन्मय हो जाता हैं। वाद्य यंत्रों का ताल लोगों की अन्तर्भावना को आन्दोलित कर देती है। गुजरात का लोक जीवन इन गीतों से ऐसा जुड़ा रहता है कि किसी राष्ट्रीय अतिथि विशेष के आगमन पर गरबा- रास से ही उनका स्वागत किया जाता है।

देश के प्रान्तीय लोक गीतों के प्रदर्शन में जहाँ होली में होली गीत या फाग गीत प्रस्तूंत किया जाता है। बंगाल के लोगों का अपना लोक गीत होता है। पंजाब के लोगों का अपना वही गरबा अपना विशेष स्थान रखता है। आज लोक साहित्य पर अनेक शोध कार्य हो रहे हैं। लोग आज अनुभव कर रहे हैं कि यह मात्र तुक ताल का गायन नहीं है बल्कि इसमें प्रचुर साहित्यिक गहराई भी है। आज गरबा गाँवों, घरों के गलियारों से निकलकर प्रबुद्धतम् चौराहों तक छा गया है। आकेष्ट्रा प्रोग्रामों में भी इसको स्थान मिल रहा है। (वही, रैन बसेरा, सितम्बर-2000, पृ-02)

इस तरह हम देख सकते हैं कि जयसिंह व्यथित एक निष्ठावान और राष्ट्रवादी विचारक के रूप में संपादकीय दायित्व का निवार्ह कर रहे हैं और यह गौरव परंपरा महात्मा गाँधी के उद्वात विचारों से संलग्न प्रतीत होती है।

कवि डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के काव्य कलागत प्रदर्शन के प्रति न तो कोई हठग्रह और नहीं पूर्वाग्रह। 'कैकेयी के राम' में उन्होंने यह सिद्ध किया है कि उनकी

लेखनी साहित्य और गरिमामय काव्य की सृजन कर सकती है किन्तु वे प्रायः लोक-भोग सहज काव्य के ही पक्षधर रहे है। इसीलिए उनके काव्य में रस, अलंकार, भाषा, गुण, दोष आदि कलावादी तत्व सहजरूप में ही प्रस्तुत हुए।

अगले अध्याय में उनके कृतित्व का समग्र मूल्यांकन करते हुए उनकी विशिष्ट उपलब्धियों की चर्चा करेंगे।